मलाबार का मुख्य नगर कालीकट है। यह बहुत बड़ा शहर है। इसके दक्षिण-पूर्वी भाग में मोपला मुसल्मानों की बस्ती है; उत्तर-पश्चिमाञ्चल में पोर्चुगीज़ लोग रहते हैं; जेल, ज़िले की कचहरियां और रोमनकैथलिक गिरजाघर भी उधर ही हैं। इस भाग में एक बहुत बड़ा तालाब है। मलयालियों की बस्ती अलग है। जेल के पास किरिस्तानों का समाधिस्थान है। यहां पर मलाबार के कलेक्टर और मैजिस्ट्रेट कानली साहब गड़े हुए हैं। १८५५ ईसवी में मोपला लोगों ने आपका ख़ून कर डाला था। कानली साहब की अदालत में इन लोगों का एक मुक़दमा चला। पर जिस पक्षवालों की हार हुई उन्होंने न्यायकारी साहब ही को भाले से छेद डाला। कानली साहब की हत्या होने पर देशी फ़ौज मँगाई गई। मगर मोपलों ने उसे भी मार भगाया। तब गोरों की पलटन आई; उसने इन लोगों का पारिपत्य किया। कालीकट के जिस महल्ले में मोपला लोग रहते हैं उसका नाम मालापुरम् और जिसमें हिन्दू रहते हैं उसका नोलमपूर है। कालीकट में सफ़ाई बहुत रहती है। वहां के मकान, उनके बरांडे, और नारियल तथा अनेक प्रकार के लतापत्रादिक से वेष्टित स्वच्छ वाटिकायें देखकर तबीयत ख़ुश हो जाती है। ग़रीब से ग़रीब आदमियों के मकान भी मैले नहीं रहते।

यह वही कालीकट है जहां से किसी समय सैकड़ों तरह की छीटें विलायत को जाती थीं। जो कपड़ा कालीकट से जाता था उसका नाम, योरपवालों ने, कालीकट के नामानुसार "कैलिको" रक्खा था। यह "कैलिको" शब्द अब तक प्रचलित है। ११ मई १४९८ ईसवी को सबसे पहले योरप के पोर्चुगीज़ प्रवासी वास्कोडगामा ने कालीकट के किनारे पैर रक्खा। उस समय यह नगर दक्षिण भारत की अमरावती था। वहां सैकड़ों ऊंचे ऊंचे मकान और मन्दिरों के शिखर आकाश में बादलों से बात करते थे। १५०९ ईसवी में, पोर्चुगीज़ों के सेनानायक डान फरनानडो कैाटीन्हो ने ३००० सिपाही लेकर कालीकट पर हमला किया; परन्तु वह ख़ुद मारा गया और उसकी फ़ौज, जो कटने से बची, वह भग खड़ी हुई। १५१० में पोर्चुगलवालों ने इस नगर पर फिर धावा किया और इस बार इसे लूट लिया। परन्तु पीछे से उनको भागना पड़ा और बहुत कुछ नुक़सान भी उठाना पड़ा। १५१३ में कालीकट के ज़मोरिन-राज ने पोर्चुगीज़ों से सन्धि कर ली और उनको क़िलाबन्दी करके एक कोठी खोलने की अनुमति भी दे दी। १६१६ में अङ्गरेज़ों ने भी अपनी कोठी यहां खोली। टीपू ने कालीकट को कई बार जीता और विध्वंस कर दिया। नगर को उसने जला दिया, अनेक स्त्रियों की गरदन पर उनके बच्चों को बांध कर, दोनों को एक साथ ही, फाँसी दे दिया; और शेष को हाथियों के पैरों से कुचला दिया! परन्तु पीछे से टीपू के सेनापति को ९०० आदमियों के साथ अङ्गरेज़ों ने क़ैद कर लिया और १७९२ ईसवी में मलाबार सदा के लिए अङ्गरेज़ी झण्डे की छाया में आ गया।

शङ्कराचार्य की जन्मभूमि कालडी गाँव भी मलाबार ही में है। वह पूर्णा नदी के किनारे है। इस नदी का पानी इतना स्वच्छ, मधुर और रोगहारक है कि शायद ही और किसी नदी, तालाब या कुवें का होगा। दूर दूर के आदमी इसका जल पीने के लिए ले जाया करते हैं। इस नदी के किनारे सैकड़ों गाँव हैं। इन गाँवों के निवासी इस नदी में अकसर सुबह से शाम तक ग़ोते लगाया करते हैं। भावुक ब्राह्मण दिन भर इसके तट पर बैठे हुए सन्ध्यावन्दन और पूजन पाठ में निमग्न रहा करते हैं। मलाबारी लोग, स्त्री और बच्चों समेत, त्रिकाल स्नान करते हैं। मलाबार की आब हवा गरम होने के कारण स्नानाधिक्य से उनको कोई कष्ट नहीं होता। यहां की नदियों और तालाबों में मिट्टी का सर्वदा अभाव है। इस कारण, बार बार नहाने से, इन लोगों के कपड़े मैले नहीं होते।

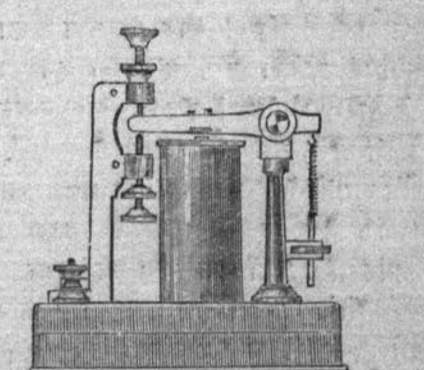
मलाबार का जो भाग अधिक पार्वतीय है वह नारियल के निबिड़ जङ्गलों से भरा हुआ है। समुद्र के किनारे किनारे सिवा नारियल के ऊंचे ऊंचे वृक्षों के और कुछ नज़र नहीं आता। नारियल का वहां सबसे अधिक व्यापार होता है। उसका तेल निकाला जाता है; उसके जटाओं की चटाइयां और रस्से रस्सियां बनती हैं; और उसके पत्तों के पंखे और छाते बनते हैं। जो भाग कम पार्वतीय है उस में चावल बहुतायत से होता है। सुपारी, इलायची, जायफल, जायपत्री और लौंग भी वहां ख़ूब होती है। क़हवा भी बहुत होता है।

मलाबार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक प्रभुत्व है। प्रायः घर की स्वामिनी वही होती हैं। उनके पति उनके घर आते हैं; वे पति के घर नहीं जातीं। वहां पर मातृवंश ही स्थावर जंगम सम्पत्ति का वारिस माना जाता है; पितृवंश नहीं माना जाता। अथवा यों कहिए कि लड़का अपनी मां का कहलाता है, बाप का नहीं कहलाता।

मलाबारी स्त्री-पुरुषों में कोई कोई बातें बहुत ही विलक्षण हैं। यहां के नंबूरी ब्राह्मणों में सिर्फ़ सब से बड़े लड़के का विवाह होता है। उसीकी सन्तति वारिस मानी जाती है। इन ब्राह्मणों में स्त्रियां बहुत वर्षों तक बे-ब्याही रहती हैं। कभी कभी चालीस चालीस पचास पचास वर्ष की बूढ़ी बूढ़ी कुमारिकाओं का ब्याह होता है! कोई कोई बे-ब्याही ही बूढ़ी हो कर मर जाती हैं। नायर जाति की शूद्र-स्त्रियों के साथ कभी कभी और वर्णवाले भी विवाह कर लेते हैं। पर इन लोगों के पति नाम के लिए पति होते हैं; अपनी स्त्रियों पर उनका बहुत कम अधिकार रहता है! बहन और बहन की सन्तति ही का स्वामित्व सारी सम्पत्ति पर रहता है। मलाबारियों की एक सम्प्रदाय थियार नाम से प्रसिद्ध है। इन लोगों के भी रीति रवाज नम्बूरियों के ऐसे होते हैं।

तार द्वारा ख़बर भेजने का यन्त्र।

विद्या और बुद्धि के बल से मनुष्य ऐसे ऐसे काम कर सकता है जिनको देखने अथवा सुनने से आश्चर्य होता है। पानी को आग पर चढ़ाने से उससे भाफ निकलने लगती है। उस भाफ में इतना बल आ जाता है कि यदि पानी के ऊपर कोई ढकन हो तो वह उसे उछाल कर फेंक देती है। इसी भाफ से रेल का यञ्जिन चलता है और कलकत्ते से कानपुर, जो लगभग ७०० मील दूर है, २१ घण्टे में वह डाक पहुंचा देता है। अर्थात् यदि आज सन्ध्या होते होते कलकत्ते में चिट्ठी डालें तो कल उसी समय वह कानपुर पहुँच जायगी। परन्तु रेल की चाल तार के सामने कुछ भी नहीं है। कलकत्ते से कानपुर तार में ख़बर भेजने से पांच मिनट भी नहीं लगते!



बिजुली के बल से तार चलता है। बिजुली से कहीं कहीं रेल तक चलने लगी है। तार में जो बिजुली काम आती है वह प्रायः तांबा, जस्ता, तूतिया और पानी के मेल से उत्पन्न की जाती है। एक कांच अथवा चीनी-मिट्टी के बरतन में नीचे तांबे का एक टुकड़ा रख दिया जाता है। उसके एक छोर में तार का टुकड़ा लगा कर बरतन के ऊपर निकाल लिया जाता है। तांबे के टुकड़े के

ऊपर लगभग डेढ़ पाव के तूतिया डाला जाता है। तूतिया के ऊपर लकड़ी का बुरादा भर कर और तार लगा हुआ जस्त का एक टुकड़ा रखकर बरतन में पानी भर दिया जाता है। इस प्रकार कई दिन तक रखने से उसमें बिजुली की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे बरतनों को 'बैटरी' कहते हैं। आवश्यकता के अनुसार वे बरतन एक दूसरे से तार द्वारा जोड़ दिये जाते हैं। जितनी अधिक बिजुली की शक्ति दरकार होती है, उतनी ही लंबी बैटरी बनानी पड़ती है। यह बैटरी, तार घर में, तार के यन्त्र से तार ही द्वारा जोड़ दी जाती है।

रेल के किनारे किनारे खम्भों पर जो तार लगे हुए हैं, वे, जहां के तारघर से उनका सम्बन्ध है वहां, पतले पतले तांबे के तारों से जोड़कर यन्त्र में लगा दिये जाते हैं। तार के यन्त्र से मिली हुई एक पीतल की चाभी सी होती है, उसे 'की' कहते हैं। 'बैटरी' का एक छोर उसमें लगा रहता है और दूसरा छोर भूमि में। 'की' को दबाने से बिजुली की धारा तारके एक छोर से दूसरे छोर तक, सैकड़ों मील, बराबर बहने लगती है। वही धारा दूसरे तारघर में, जहां उस तार का सम्बन्ध होता है, उसी क्षण, तार के यन्त्र में जाकर, उसे खटखटाने लगती है। तार के एक बहुत सादे यन्त्र का चित्र ऊपर दिया है। उसमें एक छोटे से खम्भे के ऊपर पीतल की एक छड़ सी लगी है। उस छड़ के नीचे ढोल के आकार की एक वस्तु है, उसमें ऊपर से पतला तार लिपटा है। उसके भीतर चुम्बक लगा है। चुम्बक में जब बिजुली की धारा आती है, तब वह पीतल की छड़ नीचे खिँच आती है और जब वह चली जाती है तब वह छड़ फिर अपनी जगह पर जा रहती है। इसी खींचाखींच के कारण, उस पीतल की छड़ का किनारा, आगे की ओर, दो पेचों के बीच में, कभी नीचे जाता है, कभी ऊपर। इसी नीचे ऊपर जाने में जो खट खट शब्द होता है उसीके अक्षर मान लिये गये हैं। यदि एक बार धीरे से शब्द हो तो 'ई' और एक बार धीरे से होकर साथ ही एक बार ज़ोर से भी शब्द हो तो 'अ'। इसी प्रकार वर्णमाला के सब अक्षरों की कल्पना कर ली गई है। अक्षरों से शब्द बनते हैं और शब्दों में प्रतिदिन एक एक तारघर से हज़ारों ख़बरें भेजी जाती हैं।

तार के सादे यन्त्रों में एक ही मनुष्य बैठकर तार का काम कर सकता है; परन्तु ऐसे भी यन्त्र अब निकले हैं जिनमें चार चार मनुष्य एक ही साथ बैठकर एक ही तार के ऊपर जुदी जुदी चार ख़बरें भेज सकते हैं। यही नहीं; कोई कोई यन्त्र ऐसे हैं जिनमें ख़बरें जैसी की तैसी स्याही से छप भी जाती हैं। साधारण यन्त्रों में तीस चालीस शब्द से अधिक एक मिनट में नहीं जा सकते; परन्तु एक प्रकार के यन्त्र निकले हैं जो एक मिनट में ५०० शब्द तक तार में भेज सकते हैं। इन बातों को सोचने से बुद्धि नहीं काम करती। जिस विद्वान ने तार चलाने की युक्ति निकाली उसको धन्य है। यदि तार न होता तो रेल का चलना कठिन हो जाता। तारघरों में घण्टियां लगी रहती हैं। तार आने के समय यदि तारबाबू सोया होता है तो वह घण्टी का बजना सुनकर जग पड़ता है।

तार की कोई कोई अद्भुत बातें सुनकर बड़ा ही आश्चर्य्य होता है। बिलायत में बड़े बड़े सौदागरों ने निज के तारघर खोल रक्खे हैं। लण्डन में एक बार एक साहब रात को अपनी दूकान पर आये। दूकान के भीतर तारघर था और एक सिपाही वहीं सोता था। साहब चिल्लाते और किवाड़ खटखटाते रहे; परन्तु वह सिपाही न जगा। इस तारघर का सम्बन्ध, ग्लासगो में जो एक दूसरी दूकान साहब की थी, उससे था। लण्डन में जहां यह तारघर था वहां एक दूसरा तारघर भी था और वह भी ग्लासगो से सम्बन्ध रखता था। साहब ने इस दूसरे तारघर से ग्लासगो को तार भेजा। ग्लासगो में जब तार पहुँचा तब वह उन साहब के तारघर में भेजा गया। वहां से उसकी



एक मालयाली महिला ।



एक नाम्बूरी ब्राह्मण ।

ख़बर लण्डन आई। लण्डन में साहब की दूकान के भीतर तारघर में जब घण्टी बजी तब वह सिपाही जगा और साहब के लिए उसने किवाड़ खोला। किवाड़ खुलाने के लिए कितना झगड़ा करना पड़ा। परन्तु इतनी दूर ख़बरें आने जाने में बहुत देर नहीं लगी। केवल दस मिनट में सब हो गया!

अब इटली के मारकोनी साहब ने बिना तार ही के तार की ख़बर भेजने की युक्ति निकाली है। सरस्वती में, इस बेतार के तार का भी, किसी समय, वृत्तान्त देने का विचार है।

कुण्डलिनी।

कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं
वाचः कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदादिभेदक्रमैः।
श्वासोच्छ्वासविवर्तनेन जगताञ्जीवो यया धार्य्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीपावली॥

षट्चक्रनिरूपण।

अर्थात् कोमल काव्य की रचना के क्रमानुसार, मत्त भ्रमरवत्, मधुर मधुर तानों का आलाप करती हुई, जो, समस्त सांसारिक जीवों के प्राण, श्वासोच्छ्वास के आवागमन द्वारा, धारण किये रहती है, प्रदीप्त दीपावली के समान उस कुण्डलिनी का घर मूलाधार की कमल रूपी गुहा है।

साधारण मनुष्यों की इन्द्रियों से अतीत इस कुण्डलिनी का वर्णन हम बहुत थोड़े में करना चाहते हैं। परन्तु, इस विषय में कुछ लिखने के पहले हम यह बतलाना आवश्यक समझते हैं कि योग क्या चीज़ है; क्योंकि कुण्डलिनी केवल योगियों की ही ज्ञानगम्य वस्तु है। योगसिद्ध योगी ही उसे जान सकते हैं।

चित्त की वृत्ति को रोकने के अनन्तर उसे अपने ही में लय करके, आत्म-स्वरूप के अनुभव में निमग्न हो जाने पर मनुष्य की जो स्थिति होती है, उसे योग कहते हैं। योग के आठ अङ्ग हैं। यथा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। सच बोलने, चोरी न करने, दूसरे की चीज़ पाने की इच्छा न रखने और वीर्य की रक्षा करने का नाम यम है। सन्तोष, पवित्रता, जप, तप और ईश्वर के भजन-पूजन को नियम कहते हैं। अष्टाङ्ग योग की सहायक कुछ विशेष प्रकार की बैठकों को आसन कहते हैं। श्वासोच्छ्वास की स्थिरता को प्राणायाम कहते हैं। चित्त को आत्मरूप में लीन करने और इन्द्रियों को विषयों से पराङ्मुख करने का नाम प्रत्याहार है। जहां इच्छा हो वहीं चित्त को स्थिर कर देना धारणा कहलाती है। धारणा के अखण्ड अनुभव का नाम ध्यान है। ध्यान और धारणा का सम्बन्ध हो जाने पर जब मन का लय हो जाता है और किसी दूसरी वस्तु का अनुभव नहीं होता, तब जो स्थिति होती है, उसे समाधि कहते हैं। वही योग की चरम सीमा है। यम और नियम के मेल को वैराग्यकला; आसन और प्राणायाम के मेल को अभ्यासकला; धारणा, ध्यान और समाधि के मेल को संयम; और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इन चारों, के मेल को समाधिकला कहते हैं। अभ्यासकला का नाम हठयोग और समाधि तथा वैराग्यकला का नाम राजयोग है।

हठयोग में ८४ आसन होते हैं। उनमें से १८ मुख्य हैं। उनमें से भी सिद्धासन और वज्रासन की महिमा विशेष है। मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय के बीच में बायें पैर का तलवा, शिश्न के ऊपर दाहना पैर और छाती के ऊपर चिबुक, अर्थात् ठुड्डी, रखकर निश्चिन्त भाव से दोनों भौंहों के मध्यभाग को देखते रहने का नाम सिद्धासन है। और, मलत्यागेन्द्रिय और शिश्न के बीच की सीवन को बांये पैर की एँड़ी से दबाकर उस पर दाहना पैर रखकर बैठने का नाम वज्रासन है। इन दोनों आसनों से मूलबन्ध की सिद्धि होती है। इन आसनों

के द्वारा सीवन को ज़ोर से दबाने के अनन्तर, मलत्यागेन्द्रिय का आकुञ्चन करके, अपान, अर्थात् अधोगामी वायु, का नीचे जाना रोक कर उसे ऊपर ले जाने को योगी मूलबन्ध कहते हैं।

आसनों की सिद्धि हो जाने पर प्राणायाम किया जाता है। वह तीन प्रकार का है—पूरक, कुम्भक और रेचक। श्वास-वायु को नाक के रास्ते से धीरे धीरे खींचने को पूरक, मस्तकरूपी कुम्भ में उसे भर रखने को कुम्भक और धीरे धीरे उसे नाक की ही राह से छोड़ने को रेचक कहते हैं। १२ सेकण्ड तक पूरक करके, पचास सेकण्ड तक कुम्भक करने के बाद, कोई पचीस सेकण्ड में रेचक करना सध जाने पर कनिष्ठ प्रकार का प्राणायाम होता है। इस प्राणायाम का बारह गुना अभ्यास बढ़ने से प्रत्याहार होता है। प्रत्याहार का बारहगुना होने से धारणा होती है। धारणा के बारहगुना काल को ध्यान कहते हैं। और ध्यान के बारहगुना अभ्यास को समाधि कहते हैं। अर्थात् एक दिन रात (२४ घण्टे) तक श्वास-वायु को मस्तक में बन्द रखने का नाम ध्यान और बारह दिन तक अखण्ड ध्यान में मग्न रहने का नाम समाधि है।

योगियों ने १२ चक्रों की भावना की है—६ की शरीर में और ६ की मस्तक में। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और अग्नि—ये ६ चक्र शरीर के भीतर कल्पना किये गये हैं। मस्तक में जो ६ चक्र हैं उनमें से पहला त्रिकुट नामक चक्र दोनों भौंहों के कुछ ऊपर है। और चक्र उसके भी आगे हैं। जो चक्र सब के ऊपर है उसका नाम मेरुशिखर अथवा सहस्रार चक्र है। इन चक्रों के स्थान, रङ्ग, दल, दलों के अक्षर, और देवता भी माने गये हैं। उनका विवरण हम नीचे के कोष्ठक में देते हैं—

चक्रों के नाम	स्थान	रङ्ग	दलों की संख्या	दलों के अक्षर	देवता
मूलधार	गुद	लाल	४	व से स तक	गणेश
स्वाधिष्ठान	शिश्न की जड़	पीला	६	ब से ल तक	ब्रह्मा
मणिपुर	नाभि	नीला	१०	ड से फ तक	विष्णु
अनाहत	हृदय	लाल-पीला-मिश्रित	१२	क से ठ तक	रुद्र
विशुद्ध	कण्ठ	धुँधला-धूसर	१६	अ से अः तक	जीवात्मा
अग्नि	भौंहों का बीच	बिजुली के समान चमकीला	२	ह और क्ष	परमात्मा
मेरुशिखर (सहस्रार)	ब्रह्मरन्ध्र	अवर्णनीय	१०००	ओंकार	एक अनिर्वचनीय चिन्मय शक्ति

इन चक्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के कमलों की भावना की गई है और उनके प्रत्येक दल—प्रत्येक पखुड़ी—में एक एक अक्षर अङ्कित किया हुआ माना गया है। इस चक्र-कल्पना को विशद करने के लिए हम, यहां पर, एक मानवचित्र देते हैं। उसमें सब चक्र यथास्थान दिखलाये गये हैं। इन चक्रों के बीच में, नीचे से ऊपर तक, एक सर्पिणी बनी है। वही कुण्डलिनी है। उसका एक चित्र हम अलग भी देते हैं।

योगिजन कहते हैं कि पीठ की हड्डी, अर्थात् मेरुदण्ड या रीढ़, के एक इस तरफ़ और एक उस तरफ़, ऐसी दो छोटी छोटी नलियां हैं। उनके भीतर से दो तरह के ज्ञानतन्तु-प्रवाह बहा करते हैं। इन नलियों में से एक का नाम इड़ा और दूसरी

का पिङ्गला है। इनके बीच में एक ग्रैार नली है। योगी उसे सुषुम्ना कहते हैं। जिसे वे कुण्डलिनी कहते हैं वह सुषुम्ना के सबसे नीचे के भाग में रहती है। जैसे सर्पिणी कुण्डलाकार बैठती है वैसे ही यह भी अपने स्थान में कुण्डली—घेरे—किये हुए बैठी रहती है। इसकी कुण्डलियों की संख्या साढ़े तीन मानी गई है। इसका आकार तिकोना होता है। योग की साधना करके योगिजन इस सोई हुई कुण्डलिनी को जगाते हैं। उसके जगाने के लिए ही योग का अभ्यास किया जाता है। अभ्यास बढ़ने से कुण्डलिनी जागृत हो उठती है। जागृत होने पर, सर्पिणी जैसे एक जगह पर स्थिर नहीं रहती, वैसे ही यह भी चञ्चलता दिखाने लगती है। सुषुम्ना नाड़ी पोली होती है। इस लिए उसी के भीतर ही भीतर वह सिर की तरफ़ चढ़ने लगती है; ग्रैार जिन चक्रों का वर्णन ऊपर किया गया है उनको भेद करते हुए, ब्रह्मरन्ध्र तक वह चली जाती है। जैसे जैसे वह ऊपर की ग्रोर जाती है तैसे ही तैसे योगियों के सांसारिक बन्धन ढीले होते जाते हैं ग्रैार भिन्न भिन्न प्रकार की अनेक अलौकिक शक्तियां उनको प्राप्त होती जाती हैं। यहां तक कि शरीर ग्रैार मन से योगियों का सम्बन्ध बिलकुल ही नष्ट हो जाता है ग्रैार वे परमानन्द में मग्न हो जाते हैं। इस अवस्था को पहुँचने पर उन्हें परमात्मा का शुद्ध रूप देख पड़ने लगता है।

वज्रासन ग्रैार सिद्धासन का अभ्यास होने पर मूलबन्ध की सिद्धि होती है। मूलबन्ध सध जाने पर अपान-वायु का अधोगमन बन्द हो जाता है। तब वह ऊपर की ग्रोर जाने लगता है ग्रैार मार्ग में सोई हुई कुण्डलिनी को ज़ोर से धक्का देता है। उसके धक्कों से वह क्षुब्ध हो कर धीरे धीरे जग उठती है ग्रैार अपनी कुण्डलियों को खोल कर सीधी हो जाती है। उस रुमय सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है ग्रैार प्राण तथा अपान वायु का योग होने से योगी को बहुत कष्ट होता है। जगने पर कुण्डलिनी हृदय के नीचे की वायु को पीकर हड्डी, शिरा ग्रैार मांस के रस को चूसती है; प्राण-वायु को अधोगामी ग्रैार अपान-वायु को ऊर्ध्वगामी करती है; ग्रैार पूर्वोक्त चक्रों का भेद करती हुई ऊपर चढ़ जाती है। यथोक्त रीति से जब योगी इस कुण्डलिनी को सहस्रार चक्र में पहुँचा देता है तब उसे जो आनन्द मिलता है वह अवर्णनीय है। उस चक्र में कुण्डलिनी को ठहरा रखना ही योगी का सबसे बड़ा कर्तव्य है। मोक्ष का साधनीभूत, महातेजों का तेज, योगद्रुम का अद्भुत फल, परमानन्द का अधिष्ठान ग्रैार अनादि तथा अक्षय्य परमात्मसंज्ञक तत्व वहीं रहता है। वहां रहनेवाले अनिर्वचनीय परमात्मा का अवलोकन करने के लिए ही यह अखण्ड अध्यवसाय किया जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी के नीचे के सिरे के पास मज्जा का एक टुकड़ा है। उसका भी आकार तिकोना है। यह बात शरीर-शास्त्र के जाननेवालों ने अपनी आँखों देखी है। उसे ही योगियों ने कुण्डलिनी माना है ग्रैार जिन भिन्न भिन्न चक्रों की उन्होंने कल्पना की है वे भी एक प्रकार के मज्जाकन्द ही हैं। मनुष्य के शरीर में सहस्रशः ज्ञानतन्तु फैले हुए हैं। उन सब का सम्बन्ध मस्तक से है। मस्तक ही में ज्ञान का भण्डार है। वही ज्ञानतन्तुग्रों की राजधानी है। ज्ञानतन्तुग्रों के द्वारा दो प्रकार के ज्ञानप्रवाह बहा करते हैं। एक ग्राहक, दूसरा अभिसारक। ग्राहक प्रवाह बाहरी ज्ञान को मस्तक में पहुँचाता है। ग्रैार अभिसारक मस्तक से ज्ञान को बाहर ले आता है। पृष्ठरज्जु, मेरुदण्ड, या रीढ़ का ऊपरी भाग गोल है। पर वह सिरके भीतरी भाग से मिला हुआ नहीं है। सिरके भीतर जो एक प्रकार का रस है उसीके ऊपर वह गोला तैरा करता है। ज्ञान को लेने या देने का काम वह वहीं समाप्त कर देता है।

संसार में कई प्रकार की शक्तियां है। उनमें से विद्युत् अर्थात् बिजुली की शक्ति भी एक शक्ति है। यह शक्ति विलक्षण है। जिस शक्ति के बल से किसी पदार्थ के सब परमाणु एकही साथ, एक

ही तरफ़, जाने लगते हैं उसे बिजुली की शक्ति कहते हैं। श्वासोच्छ्वास से शरीर के परमाणुओं की धारा या वृत्ति एकही तरफ़ बहती है। और, मन जब इच्छामय हो जाता है तब ज्ञानप्रवाह के। भी बिजुली ही की शक्ति के समान एक शक्ति प्राप्त होती है। अर्थात् जब इच्छा का प्रवाह ज्ञानतन्तुओं में बहने लगता है तब उसमें थोड़ी बहुत बिजुली की शक्ति आ जाती है। शरीर की सब शक्तियां जब मन के आधीन हो जाती हैं, और एक तरफ़ यथेच्छ प्रवाहित होने लगती हैं, तब शरीर एक तरह की बिजुली की बैटरी (ख़ज़ाना—कोश) बन जाता है। यह बात प्राणायाम करने से सिद्ध होती है। उससे शरीर की सब क्रियायें यथानियम होने लगती हैं और एक प्रकार की शक्ति का प्रवाह बह उठता है।

ज्ञानतन्तुओं के ही मार्ग से सब प्रकार का ज्ञान होता है। इन तन्तुओं का जाल मन ने ही बनाया है। इसलिए योगियों का कथन है कि यदि मन इस जाल के। तोड़ दे तो और मार्ग से भी सब बातों का ज्ञान हो सके। वह मार्ग वही पूर्ववर्णित इच्छा, शक्ति, या बिजुली का प्रवाह है। ऐसा होने से आप ही आप ज्ञान होता रहैगा और उसे शरीर के आधीन न रहना पड़ैगा।

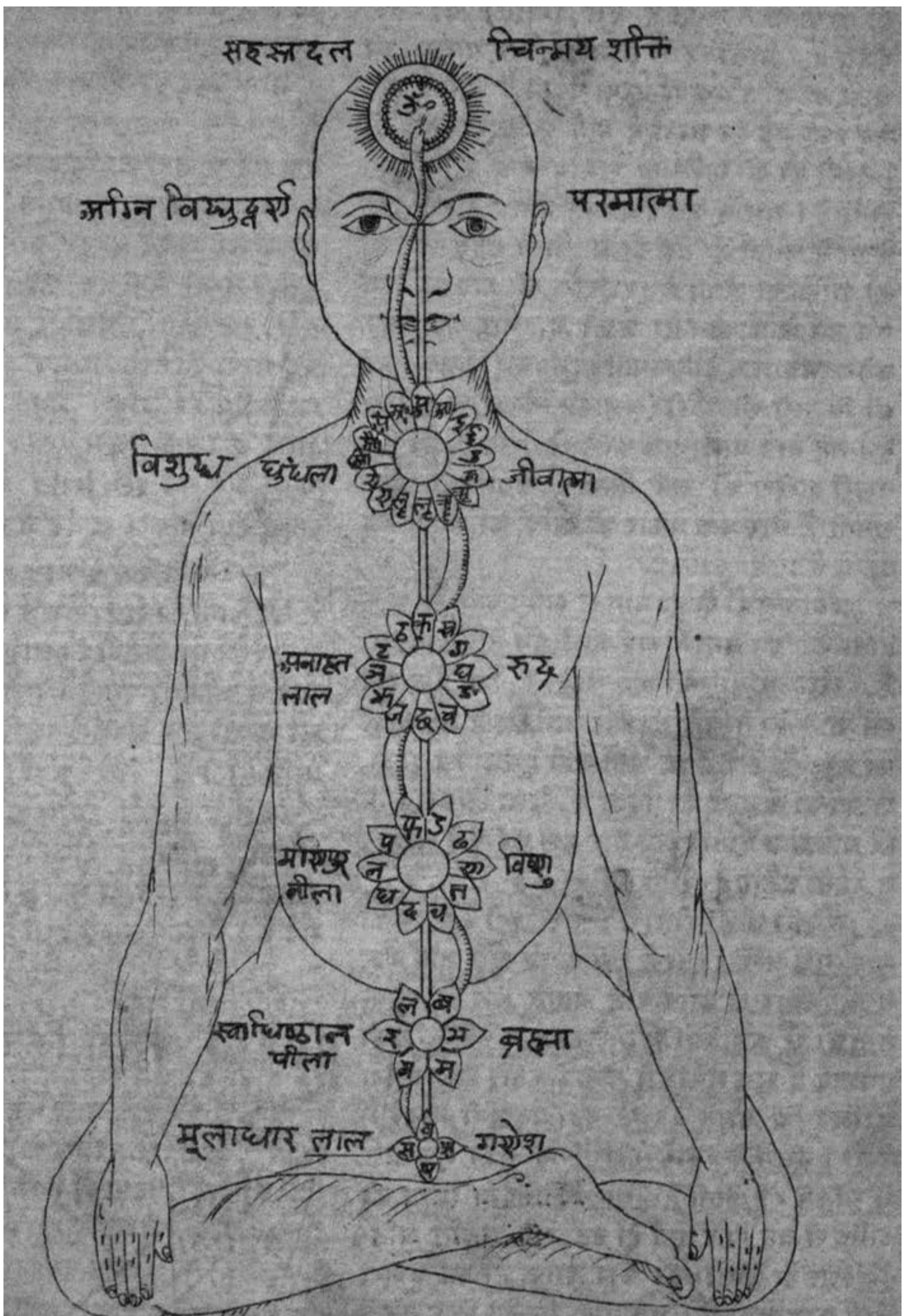
सुषुम्ना नाड़ी रीढ़ के भीतर होती है। उसका मुँह नीचे बन्द रहता है। यदि वह खुल जाय और उसके भीतर से ज्ञानप्रवाह बहाते बनै तो ज्ञानतन्तुओं से काम लेने की ज़ुरूरत न रहे। जितने पूर्वज्ञान हैं सब मूलाधार चक्र में रहते हैं। कल्पना कीजिए कि हमने १९०४ की प्रदर्शनी बम्बई में देखी। उसमें देखे गये पदार्थों का ज्ञान मूलाधार में अङ्कित रह जाता है। और भावना या क्रिया की शक्ति से वह फिर नया हो उठता है, अर्थात् प्रतिबिम्बित हो जाता है। उस शक्ति ही का दूसरा नाम कुण्डलिनी है। अब यदि, मन के। स्थिर करके उससे किसी एकहीं वस्तु की बहुत अधिक भावना या चिन्तना की जाय तो मूलाधार चक्र सन्तप्त हो उठे और उसकी गरमी से कुण्डलिनी नामक शक्ति जग पड़े। तब इच्छा की प्रबलता से यदि वह सुषुम्ना के भीतर कर दी जा सके और ऊपर की ओर एक के आगे दूसरे मज्जा-चक्र के। भेदती हुई वह ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाय तो विलक्षण बातों का ज्ञान होने लगे। उस समय ज्ञानप्राप्ति के लिए ज्ञानतन्तुओं की अपेक्षा न रहे। बहुत अधिक अभ्यास बढ़ने से, अनन्त जन्मों में एकत्र की गई शक्ति का समूह यदि, इस तरह, सुषुम्ना के मार्ग से मस्तिष्क तक पहुँचाया जा सके तो मन ज्ञानमय अथवा विद्युच्छक्तिमय हो जाय। जगत् में जितनी वैद्युतिक शक्ति है उसका उससे एकत्व हो जाय। अतएव जो अपने मन के। इस स्थिति के। पहुँचा दे उसके सर्वज्ञ होने में कोई सन्देह न रहे।

कुण्डलिनी जब ईप्सित स्थान के। पहुँच जाती हैं तब योगी के। सारा संसार ही ज्ञानमय देख पड़ने लगता है। कुण्डलिनी के। जागृत करने ही से परमात्मज्ञान की देदीप्यमान शिखा उसके सामने जलने सी लगती है। अतीन्द्रियशक्ति और परमज्ञान की प्राप्ति होती है। जहां कहीं कोई अलौकिक शक्ति देखने में आवे वहां समझना चाहिए कि ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः कुण्डलिनी का थोड़ा बहुत प्रवेश सुषुम्ना में अवश्य हो गया है। योगियों का ऐसाही मत है। उनका साक्ष्य इसी प्रकार का है।

स्कूली किताबें।

गये वर्ष, मार्च की सरस्वती के आरम्भ में, रीडर्स के विषय में हमने एक टिप्पणी लिखी थी। पाठकों ने उसे देखा होगा। गवर्नमेण्ट के। तीन रीडर्स दरकार हैं, यथा—

(क) लोअर प्राइमरी, अर्थात् सबसे नीचे के दे। दरजों के लिए विज्ञान और कहानियोंवाली एक रीडर।



शरीरान्तरस्थ कुण्डलिनी



(ख) अपर प्राइमरी, अर्थात् मँझले दो दरजों के लिए क़िस्से कहानियां, जीवनचरित, नीति-मूलक उपदेश और कविता आदि से भरी हुई एक रीडर।

(ग) मँझले और मिडिल (सबसे ऊपर के दो दरजों) के लिए एक विज्ञान-रीडर। इसके दो भाग दरकार हैं। पहला भाग मँझले दरजों के लिए और दूसरा ऊपर के दरजों के लिए।

प्रत्येक रीडर दो दो वर्ष तक पढ़ाने के लिए चाहिए। इन तीन प्रकार की रीडर्स के लिए गवर्नमेण्ट ने इनाम देने का इश्तहार दिया। प्रत्येक रीडर के बनानेवालों में से सबसे अच्छी तीन रीडर्स बनानेवालों को पाँच पाँच सौ रुपया उसने देना मंज़ूर किया। अर्थात् प्रति रीडर के लिए १५.००, और तीनों के लिए ४५०० रुपये गवर्नमेण्ट ने ख़र्च करना चाहा। इन रीडर्स को गवर्नमेण्ट ने ऐसी भाषा में माँगा जो हिन्दू और मुसल्मान दोनों समझ सकें और बिना किसी कठिनता के नागरी और फ़ारसी दोनों अक्षरों में लिखी जा सकें।

गवर्नमेण्ट के इश्तहार को पढ़कर रीडर्स लिखने की धूम मच गई। अनेक बाबू, पण्डित, मुन्शी और साहब लिखने पर उतारू हुए। फ़रवरी से लेकर अगस्त तक लोग रीडर्स लिखने में जुटे रहे। आज्ञा थी कि (क) और (ख) रीडर्स फ़ारसी के भी अक्षरों में छपा कर भेजी जायँ और नागरी के भी अक्षरों में। और उनका तरजुमा भी अङ्गरेज़ी में भेजा जाय। अर्थात्, एक एक रीडर की तीन तीन रीडर्स बनें। परन्तु ८ अगस्त के गज़ट में हुक्म हुआ कि इन रीडर्स का अङ्गरेज़ी तरजमा तो अवश्य हो; पर नागरी और फ़ारसी दोनों अक्षरों में उनको छपाना आवश्यक नहीं। दो में से एक ही प्रकार के अक्षरों में छपाने से काम निकल जायगा। साथ ही यह भी कहा गया कि जिसकी ख़ुशी हो वह दोनों अक्षरों में भेजे। परन्तु नागरी और फ़ारसी अक्षरों में लिखी गई रीडर्स की भाषा में, विशेष करके पद्य में, यदि अन्तर हो तो, जिस भाग में अन्तर हो वह भाग दोनों अक्षरों में छपाकर भेजा जाय। जान पड़ता है किसीको एक ही भाषा, दोनों अक्षरों में लिखने में कठिनता मालूम हुई; और यह कठिनता पद्य लिखने में और भी अधिक बढ़ गई। इसीसे शायद गवर्नमेण्ट को यह नया नियम बनाना पड़ा।

पहले हुक्म था कि अगस्त में सब रीडर्स डाइरेकृर साहब को भेज दी जायँ। परन्तु रीडर्स बनानेवालों के सुभीते के ख़याल से यह मुद्दत बढ़ा दी। आज्ञा हुई कि आक्टोबर के अन्त में किताबें भेजी जायँ।

एक पादरी साहब ने गवर्नमेण्ट को याद दिलाई कि (क) और (ख) रीडर्स में ऐसे पाठ भी रहें जिनमें शराब, अफ़ीम, गाँजा और भाँग इत्यादि की हानियां बतलाई गई हों। पादरी साहब की चिट्ठी गवर्नमेण्ट ने ९ जुलाई के गज़ट में रीडर्स बनानेवालों के जानने के लिए छापी। इस गज़ट में गवर्नमेण्ट ने और भी एक नई बात बतलाई। उसने (क) रीडर का विस्तार भी बतलाया। यदि ये सब बातें पहले ही से बतला दी जातीं तो बहुत अच्छा होता।

यथासमय, आक्टोबर में, रीडर्स भेजी जाने लगीं। पर एक आध लिखनेवाले ने गवर्नमेण्ट से फिर भी समय बढ़ाने की प्रार्थना की! पर इस बार यह प्रार्थना नामंज़ूर हुई। सब रीडर्स पहुंच जाने पर, उनको जाँच के लिए, गवर्नमेण्ट ने एक कमिटी बनाई। उसमें उसने ये मेम्बर रक्खे—

साहब
१ माननीय मिस्टर आर० जी० हार्डी, सी० एस० आई०, रेविन्यू बोर्ड के सीनियर मेम्बर (सभापति)
२ डाकृर जी० एफ़० डब्लू० थीबो, पी० यच० डी०, प्रिंसिपल म्योर कालेज।
३ मिस्टर जे० मरे, एम० ए०, स्कूलों के इन्स्पेकृर, मुरादाबाद।
४ डाकृर ए० यच० इविंग; एम० ए०, पी. यच. डी., इलाहाबाद।

हिन्दू
६ पण्डित सुन्दरलाल साहब, बी० ए०, इलाहाबाद।
७ पण्डित कालीदत्त साहब दुबे, एम० ए०, स्कूलों के असिस्टण्ट इन्स्पेकृर, बनारस।
८ बाबू राधारमण साहब, एम० ए०, डेप्युटी कलेकृर, पीलीभीत।

मुसलमान
९ सैयद जैनुद्दीन साहब, एम० ए०, डेप्युटी कलेकृर, मैनपुरी।
१० शेख़ इबादुल्ला साहब, एम० ए०, स्कूलों के असिस्टण्ट इन्स्पेकृर, शाहजहांपुर।

ये सब साहब १५ नवम्बर १९०४ को, म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद में इकट्ठे हुए। २७ रीडर्स उनके सामने पेश हुईं। उन पर उन्होंने २६ नवम्बर तक विचार किया; और २९ नवम्बर को, कमिटी के मन्त्री मरे साहब ने, गवर्नमेण्ट को एक रिपोर्ट भेजकर, इस काम से फरागत पाई। जितनी रीडर्स विचार के लिए उपस्थित की गईं उनकी एक फेहरिस्त हम नीचे देते हैं—

(क)

१ न्यू नेचर रीडर, भाग १। मिस्टर हैरी बानवेरी, बी० ए०, हेडमास्टर, जुबिलीहाईस्कूल, लखनऊ की बनाई।
२ जनरल रीडर, लोअर प्राइमरी। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक मैकमिलन कम्पनी।
३ इण्डियन प्रेस रीडर, भाग १। मिस्टर ई० जी० हिलकृत, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
४ लोअर प्राइमरी रीडर। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
५ हिन्दुस्तानी रीडर। "सिगमा" की बनाई।
६ लोअर प्राइमरी क्लासेज़ रीडर। "बी० एस० आर०" (B. S. R.) की बनाई।
७ लोअर प्राइमरी रीडर। बाबू रामजीदास भार्गव, सम्पादक, "अवध रिव्यू," लखनऊ की बनाई।
८ लोअर प्राइमरी रीडर। राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, कानपुर की बनाई।
९ लोअर प्राइमरी रीडर। बाबू "दुर्गा परशाद" अनुवादक (पेंशनर) की बनाई।
१० लोअर प्राइमरी रीडर। मुंशी सन्नूलाल गुप्त, बलन्दशहर की बनाई।
११ मख़ज़न इख़लाक़। मुंशी बांकेबिहारीलाल, बरेली कृत।
१२ लोअर प्राइमरी रीडर, भाग १-२। बाबू हीरालाल, पोस्टमास्टर (पेंशनर), अलीगढ़ कृत।
१३ लोअर प्राइमरी रीडर। पण्डित "इक़बाल-किशन," स्कूलों के असिस्टण्ट इन्स्पेकृर, रुहेलखण्ड डिवीज़न की बनाई।
१४ पहली, दूसरी और तीसरी रीडर्स। लाला नत्थनलाल, बलन्दशहर की बनाई।
१५ लोअर प्राइमरी रीडर। पण्डित गिरवरसहाय पांडे, उन्नाव की बनाई।

(ख)

१ न्यू जनरल रीडर। मिस्टर हैरी बानवेरी, बी० ए०, हेड मास्टर, जुबिली हाई स्कूल, लखनऊ कृत।
२ जनरल रीडर। "बी० एस० आर०" (B. S. R.) कृत।
३ अपर प्राइमरी जनरल रीडर। बाबू रामजीदास भार्गव, सम्पादक, "अवध-रिव्यू," लखनऊ कृत।
४ अपर प्राइमरी जनरल रीडर। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
५ अपर प्राइमरी रीडर। पण्डित मनोहरलाल ज़ुटशी, एम० ए०, मौलवी महम्मद उसमान अधमी, बी० ए०, और पण्डित काशीराम, एम० ए०, ट्रेनिङ्ग कालेज, इलाहाबाद की बनाई।
६ अपर प्राइमरी जनरल रीडर। राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, कानपुर कृत।

(ग)

१ न्यू नेचर रीडर, भाग २-३। मिस्टर हैरी बानवेरी, बी० ए०, हेड मास्टर, जुबिली हाई स्कूल, लखनऊ की बनाई।

२ सायन्स रीडर। लिखनेवाले का नाम नहीं दिया गया। प्रकाशक मैकमिलन कम्पनी।

३ सायन्स रीडर। "बी० एस० आर०" (B. S. R.) कृत।

४ अपर प्राइमरी और सेकण्डरी रीडर्स। बाबू रामजीदास भार्गव, लखनऊ कृत।

५ इण्डियन प्रेस रीडर्स २-३। मिस्टर ई० जी० हिल कृत।

६ अपर प्राइमरी और सेकण्डरी रीडर्स। राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, कानपुर कृत।

इस प्रकार १५+६+६=२७ रीडर्स लिखी गईं, अथवा कमिटी के सामने पेश हुईं। (ग) रीडर्स में नम्बर ३ के छोड़कर और सब दो दो भागों में थी। (क) और (ग) रीडर्स में से, इण्डियन प्रेस के लिए, हिल साहब की लिखी हुई किताबों की कमिटी ने ख़ूब तारीफ़ की और गवर्नमेण्ट से सिफ़ारिश की कि स्कूलों में वही जारी की जायं। इन दो प्रकार की रीडर्स में से नीचे की रीडर्स के लिए इनाम की योजना हुई—

(क)—१ हिल साहब की रीडर
२ मैकमिलन कम्पनी की रीडर
३ बाबू रामजीदास की रीडर

(ग)—१ हिल साहब की रीडर
२ मैकमिलन कम्पनी की रीडर
३ बानबेरी साहब की रीडर

(क) के विषय में कमिटी की राय हुई कि इस प्रकार की रीडर्स के योग्य कविता, उर्दू और हिन्दी में, नहीं है। इससे जो कविता नम्बर १ (क) में है वह निकाल डाली जाय और "ईसाप्स फ़ेबल्स" की तरह की छोटी छोटी कहानियां उसकी जगह रख दी जाँय।

(ग) सिर्फ़ अङ्गरेज़ी में हैं। कमिटी ने सिफ़ारिश की कि नम्बर १ का तरजमा बहुत ही महावरेदार देशी भाषा में किया जाय, जिसमें यह न जान पड़े, कि वह अङ्गरेज़ी का तरजमा है।

(ख) रीडर्स में से कोई रीडर, कमिटी की नज़र में, जारी करने लायक़ नहीं समझी गई। अधिक मेम्बरों की राय में बाबू रामजीदास की किताब औरों से अच्छी जँची। इस लिए कमिटी ने उसके लिए इनाम दिलाने की सिफ़ारिश की और यह भी कहा कि यदि इससे अच्छी और कोई किताब न मिले तो यही जारी कर दी जाय। पर यदि यह जारी की जाय तो फ़ारसी के शब्द कम कर दिये जायं; उर्दू कवियों की क्लिष्ट कविता सरल कर दी जाय; और अङ्गरेज़ी साहित्य के आधार पर लिखे गये पाठों को कम करके हिन्दुस्तान के इतिहास और रामायण-महाभारत आदि के आधार पर कुछ पाठ रक्खे जायं। परन्तु कमिटी ने गवर्नमेण्ट को सलाह दी है कि (ख) रीडरें फिर लिखाई जायं और उनके लिए दुबारा इनाम दिये जाने की घोषणा हो तो अच्छा है।

कमिटी की रिपोर्ट पढ़कर लफ़टिनेण्ट गवर्नर ने उसे बहुत बहुत धन्यवाद दिया और कहा कि इनाम देने के लिए शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को लिख दिया जायगा। परन्तु जो रीडर्स जारी होने को हैं उनके विषय में पीछे से हुक्म दिया जायगा।

इस तरह एक वर्ष बाद इस रीडरी झमेले का फ़ैसला हो गया। जारी होनेवाली रीडरों के विषय में अब गवर्नमेण्ट का आख़िरी हुक्म आना बाक़ी है।

जापान में स्त्री-शिक्षा।

एक अङ्गरेज़ी मासिकपुस्तक में जापान पर एक लेख निकला है। उसमें स्त्री-शिक्षा का बहुत ही अच्छा, बोधप्रद और उपयोगी वर्णन है। उसमें लिखा है कि बौद्धमत का प्रचार होने के पहले जापान में स्त्री और पुरुष दोनों बराबर समझे जाते थे। पुरुषों से स्त्रियों का दरजा किसी प्रकार कम न समझा जाता था। औरों की तो बात ही क्या है; रानियां और राजकुमारियां तक बाहर निकलती थीं; घोड़ों पर सवार होती थीं; और दूर दूर तक शिकार खेलने निकल जाया

करती थीं। पुरुषों की तरह वे भी युद्ध-विद्या सीखती थीं; हथियार बाँधती थीं; लड़ने जाती थीं; और फ़ौजों का नायकत्व भी करती थीं—फ़ौजों का "कमाण्ड" करती थीं। युद्ध ही में वे निपुण न होती थीं। और और बातों में भी वे योग्यता दिखाती थीं। वे कविता करती थीं और बड़ी बड़ी किताबें लिखकर इस बात को मानो वे सप्रमाण सिद्ध कर देती थीं कि स्त्रियां पुरुषों से किसी विषय में कम नहीं हैं। आत्मिक उन्नति की तरफ़ भी उनका ख़याल रहता था। धर्म्म और कर्तव्य को वे सब से अधिक प्रधानता देती थीं।

जब बुध और कनफुशस के धर्म्म ने जापान में प्रवेश किया तब स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में कुछ परिवर्तन हो गया। स्वदेशप्रीति, कर्तव्यपालन, दैव पर विश्वास, दयाभाव, धर्म्मोत्साह और सजातियों तथा सम्बन्धियों का आदर—स्त्रियों में पहले से अधिक उदय हो उठा। परन्तु इन धर्म्मों ने एक नई बात पैदा कर दी। वह यह कि लोग, तब से, स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हीन समझने लगे। उनका यह भी ख़याल हो गया कि स्त्रियां स्वभाव ही से पापात्मा होती हैं। सब यही समझने लगे कि आज्ञापालक और नम्र होना ही स्त्रियों का प्रधान धर्म्म है। उनको सिर्फ़ इतनी ही शिक्षा देना उचित समझा जाने लगा जितने से वे घर-गृहस्थी के काम काज अच्छी तरह कर सकें; सोने, बुनने और रंगने के सब काम कर सकें; घर को सुसज्जित रख सकें; और गीत-वाद्य से अपने घरवालों और आये गये मेहमानों को प्रसन्न कर सकें।

कुछ काल के अनन्तर जापान में जब उन लोगों की प्रभुता बढ़ी जो युद्धजीवी, अर्थात् क्षत्रियधर्म्म के अनुयायी, थे तब स्त्रियों की स्थिति में फिर परिवर्तन हुआ। पहले की अपेक्षा उनका सम्मान बढ़ा। वे पुरुषों की सहयोगिनी समझी जाने लगीं। गाने बजाने के साथ नाचना भी स्त्रियों के लिए आवश्यक हुआ। क्षत्रियों की स्त्रियों ने शस्त्र चलाना भी सीखा। ख़ञ्जर से काम लेने में उन्होंने विशेष विज्ञता प्राप्त की। सब स्त्रियां अपने सलूके के भीतर ख़ञ्जर बाँधने लगीं। यह ख़ञ्जर शत्रुओं के मारने के भी काम में आने लगा और बाँधनेवाली स्त्रियों के भी। सतीत्वहरण या किसी प्रकार का दुःसह अपमान होते देख स्त्रियां अपने ख़ञ्जर को अपने कलेजे में धँसाने से न हिचकने लगीं। हथियार चलाने की शिक्षा स्त्रियों को घर ही में दी जाती थी स्त्रियों के लिए जो गुण आवश्यक होते हैं उनमें तो वे किसी प्रकार त्रुटि न होने देती ही थीं; पर, समय आने पर, अपने हथियारों के द्वारा अपने पति की सहायता करने और अपनी इज़्ज़त बचाने में भी वे कसर न करती थीं।

जब शोगन जातिवालों का प्रभुत्व बढ़ा तब लिखना पढ़ना, विशेष रूप से, स्त्रियों को सिखलाया जाने लगा। समुराई सम्प्रदाय की स्त्रियों के लिए स्कूल और कालेज खुल गये। पर और सम्प्रदाय की स्त्रियों की शिक्षा की तरफ़ कम ध्यान रहा। इससे किसी किसी का यह ख़याल हो गया कि स्त्रियों को ऊंची शिक्षा देना हानिकारक है। उन्हें डर हुआ कि बहुत पढ़ जानेसे स्त्रियां बिगड़ जायंगी। अपने को पुरुषों की बराबरी का समझने लगेंगी। घमण्डिनी हो जायँगी। और विवाह होने पर अपने पतियों को प्रसन्न न रख सकेंगी। परन्तु बड़े बड़े लोगों के यहां की स्त्रियां बराबर शिक्षा पाती रहीं—कोई घर पर, कोई स्कूल में। सास, ससुर, पति और पुत्र की आज्ञा मानना, सब से उदार भाव रखना, क्रोध न करना, मैली कुचैली न रहना, झूंठ न बोलना और घर का कामकाज दिल लगा कर करना—ये सब बातें स्त्रियों के हृदय में अच्छी तरह अङ्कित की गईं।

आजकल तो जापान में स्त्री-शिक्षा ने बहुत ही ज़ोर पकड़ा है। बौद्धधर्म्म के प्रचार के पहले स्त्रियों की वहां जो स्थिति थी उससे भी उनको आजकल की स्थिति ऊंची हो गई है। जापानियों का अब यह ख़याल है कि जिसको स्त्री शिक्षित नहीं है उसे पूरा पूरा सुख कदापि नहीं मिल सकता; उसका



मालयाली लड़कियां।



तीयर जाति की स्त्रियां।

जीवन आनन्द से नहीं व्यतीत हो सकता; उसे गृहस्थाश्रम का मज़ा हरगिज़ नहीं प्राप्त हो सकता। मिकाडो ने क़ानून जारी कर दिया है कि सात वर्ष की उमर होने पर लड़कियों को मदरसे भेजना ही चाहिए। न भेजने से मा बाप को दण्ड होता है। हर गांव और हर शहर में लड़कियों के लिए स्कूल हैं। उनमें दिनों दिन लड़कियों की संख्या बढ़ती जाती है। हर शहर में लड़के और लड़कियों के लिए हाई स्कूल और नार्मलस्कूल खुले हैं; कहीं कहीं पर लड़कियों के लिए अलग और लड़कों के लिए अलग हैं। कालेज और विश्वविद्यालय तक लड़कियों के लिए हैं; वे योरप और अमेरिका के कालेज और विश्वविद्यालयों से किसी बात में कम नहीं हैं। मामूली लिखने पढ़ने के सिवा शरीर-रक्षा के नियम भी स्कूलों में सिखलाये जाते हैं और जिस प्रकार की शिक्षा स्त्रियों को अधिक लाभ-दायक या आवश्यक है उसकी तरफ़ विशेष ध्यान दिया जाता है। टोकियो में जो लड़कियों का विश्व-विद्यालय है उसमें जो अध्यापक और अध्यापिकायें हैं उनको योग्यता को देख कर योरपवाले भी आश्चर्य करते हैं। स्त्रियों ने बहुत सी सभायें स्थापित कर रक्खी हैं। उनमें वे समाज, साहित्य और देशहित आदि की बातों पर विचार करती हैं। पुस्तकालय और क्लब भी स्त्रियों के अलग हैं। जापानी स्त्रियों में एक बात ऐसी है जो शायद ही किसी दूसरे देश की स्त्रियों में पाई जाती हो। वह स्वदेश प्रीति है। पुरुषों के हृदय में जैसे अपने देश को अखण्ड प्रीति सतत वास करती है वैसे ही स्त्रियों के हृदय में भी उसका अखण्ड वास है। यही कारण है जो रूस-जापान युद्ध में अपने देश की सहायता के लिए स्त्रियों की कौन कहै, छोटी छोटी लड़कियां तक, अपने जेब ख़र्च से रुपये पैसे बचा कर भेज रही हैं। स्त्रियां अपने ज़ेवर बेच रही हैं, सिर के बाल काट काट बाज़ार भेज रही हैं और आधे पेट रह कर पति-पुत्र से भी अधिक प्यारे अपने देश की सहायता के उपाय सोच रही हैं। जापान-नारी, तुम धन्य हो।

मैं कैसे डाकृर हो गया।

सुनते हैं, अमेरिका में एम० ए०, बी० ए०, एम० डी०, डी० सी० एल० आदि पदवियां मोल बिकती हैं; और बहुत सस्ते भाव बिकती हैं। हमारे देश में भी ये पदवियां आने लगी हैं। कुछ दिन हुए एक अमेरिकन एम० डी० की पदवी प्राप्त करनेवाले बङ्गाली बाबू के सम्बन्ध में, अङ्गरेज़ी अख़बारों में, बहुत कुछ "भवति न भवति" हुई थी। अङ्गरेज़ी के प्रसिद्ध विलायती अख़बार "टिट-बिट्स" में एक मनुष्य, जो शायद एक कल्पित व्यक्ति है, अपने विषय में यों लिखता है—

दूसरों के नाम के पीछे दो दो चार चार अक्षरों की लांगूल लगी हुई देख कर मुझे बड़ा ही डाह होता था। केम्ब्रिज और आक्सफ़र्ड की "डिगरियां" मेरे लिए वैसी ही अप्राप्य थीं जैसे चन्द्रबिम्ब के पर्वत-शिखर। जैसे जैसे मेरी उम्र बढ़ने लगी तैसे ही तैसे डाह की मात्रा भी मेरे मन में वृद्धि पाने लगी। "डाकृर आफ़ सिविल लाज़" (डी० सी० एल०) मैं कैसे हो जाऊं? यही चिन्ता दिन रात मुझे सताने लगी।

आह! मेरी नस नस में आनन्दातिशय का प्रवाह एक दिन सहसा उमड़ उठा। मैंने प्रातःकाल अपने मेज़ पर एक नीला लम्बा लिफ़ाफ़ा पाया। उस पर बड़ी ही मनोहर लाख की लाल लाल कई मोहरें लगी थीं। तुरन्त ही मैंने उसे फाड़ा। भीतर उसके एक छपा हुआ लम्बा काग़ज़ निकला। देखने में वह बहुत ही सुन्दर था। उस पर इलिनस प्रान्त के चिटालैंगा-विश्वविद्यालय के सभापति के दस्त-ख़त थे। उसमें लिखा था कि वह विश्वविद्यालय, थोड़ी फ़ीस लेकर, डाकृरों की कुछ पदवियां उन विद्वानों को देने के लिए प्रस्तुत है जिन्होंने क़ानून, विज्ञान, साहित्य और डाकृरी में ख़ूब नाम पैदा किया हो। उसमें, आगे, यह भी था कि कई लोगों की सिफ़ारिश पर मेरा नाम भी ऐसे उम्मेदवारों की सूची में दर्ज कर लिया गया है।

अपने हृदय के उच्च अभिलाष को पूरा करने, और जन्मभर डाकृर कहलाये जाने, की .खुशो का अवसर आ गया। मैं आनन्द से फूल उठा। एक फ़ार्म पर, जो उस पत्र के साथ हो आया था, झट मैंने अपना नाम, धाम, उम्र, और विद्या की नाप जोख लिख कर उसे भेज दिया और कुल ३० रुपये फ़ोस, जो माँगी गई थी, रवाने कर दी। एक महीने तक, बड़ीही उत्सुकता से राह देखने पर, एक दिन, एक फ़ुट लम्बी सर्टीफ़िकेट मेरे मेज़ पर आ गिरी। चिटालोंगा विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास करके मैं "अण्डर ग्रैजुयट" हो गया! साथ हो इसके सभापति जी का पत्र भी आया। उसमें आपने बहुत ही मेहरबानो और हमदर्दी ज़ाहिर की थी। पत्र के साथ क़ानूनो किताबों की नामावली भी नत्थो थी। सभापतिजी ने लिखा था कि इन किताबों को एक बार देख जाने ही से डाकृरी परीक्षा में मैं पास हो जाऊंगा। तीन महोने से अधिक इसके लिए दरकार न होंगे।

मैंने सोचा कि यल० यल० बो० होने के लिए कम से कम दो वर्ष दरकार होते हैं। डी० सी० यल० होने के लिए तो ८ भी कम हैं। इस लिए मैं ने सभापति जी को सैकड़ों धन्यवाद दिये और उनके नियमों को मैंने स्वोकार कर लिया। परन्तु क़ानूनी परीक्षा के पहले एक और परीक्षा देनी होती है। उस झगड़े से निवृत्ति पाने के लिए सभापति जी ने कृपापूर्वक ६० रुपए की दूसरी फ़ीस मंज़ूर कर ली; और मैं वह परीक्षा देने से बच गया।

अब मैं किताबें याद करने बैठा। तब तक मेरी दूसरी फ़ीस इलिनस पहुँच गई। इस पर मेरे नाम एक और पत्र वहां से आया। उसमें लिखा था कि क़ानूनी सवालों का जवाब देने में बड़ा झगड़ा होगा। इस लिए क़ानून के किसी विशेष विषय पर केवल एक लेख लिख कर मैं भेज दूं। मेरे सदृश विद्वान् की परीक्षा इतनी ही बस होगी। न विषय ही मेरे लिए कोई चुना गया; और न किताब ही कोई चुनी गई। यह सोने में सुगन्ध हुई। मैंने क्या किया सो सुनिए। "साधारण क़ानून" नामक एक मोटी सी किताब का एक पूरा प्रकरण, मोती के समान सुघर हुरूफ़ों में नक़ल करके, मैंने भेज दिया। उसीके साथ मुझे तीसरी फ़ीस, १२० रुपए की, भेजनी पड़ी। यह आख़िरी फ़ीस थी, यह जानकर मैं और भी .खुश हुआ।

मेरी अभिलाषा-पूर्ति का समय निकट आया। मेरे मन को सब से ऊँची उमङ्ग सिद्ध होने पर आई। मैं बड़ी ही उत्सुकता से दिन बिताने लगा। उत्सुकता क्या थी, पूरा पूरा बोख़ार था। अन्तिम दिन आया। मेरा धैर्य, मेरा रुपया, मेरा श्रम-सफल हुआ। चिट्ठीरसां ने मुझे, एक दिन, सबेरे ही, एक बहुत वज़नी नीला लिफ़ाफ़ा दिया। इसके भीतर मेरा जीवन-सर्वस्व, मेरा डिप्लोमा, मिला। मैं "डाकृर आफ़ सिविल लाज़" (डी० सी० यल०) हो ही गया!

पौधों में रसप्रवाह।

डार्विन की इवोल्यूशनल (evolutional) उपपत्ति वैज्ञानिक संसार में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ देखी जाती है। जिसको हम प्राण-रहित पदार्थ (dead matter) समझते हैं उससे वृक्ष, वृक्ष से पशु, और पशु से मनुष्य हो गये। यहो इस उपपत्ति का सारांश है। इसके प्रतिपादन में डार्विन ने मानव-शरीर और पशु-शरीर में बहुत समता दिखलाई है। पशु-शरीर और वृक्ष-शरीर में भी बहुत से शारीरिक कर्म एकसे होते हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है। सारा संसार प्राणमय है। जिसकी आत्मा सुप्तावस्था में है उसे हम मृतपदार्थ समझते हैं। परन्तु उस सुप्तावस्था से जगने की सम्भावना है। जब वह पदार्थ कुछ सज्ञानता प्राप्त कर लेगा तब ऊपर उठने की इच्छा करेगा। इच्छा करने से वह जागृत होगा और हम उसे प्राणवान् कहने लगेंगे। पर्वत की ऊंची चोटी से पत्थर का टुकड़ा लुढ़कता हुआ नीचे आ

पड़ा। चकनाचूर हो कर वह मिट्टी में मिल गया। वही पत्थर समय पाकर घास के रूप में परिणत हुआ। निर्जीव पदार्थ सजीव हुआ। सोता हुआ प्राणी अपनी इच्छा से जागृत हो उठा। "मुझमें ऊपर उठने की शक्ति है" यह समझ कर वह ऊपर को बढ़ने लगा। घास से बढ़ते बढ़ते वह बड़ा भारी वृक्ष हो गया। अचल वृक्ष से उन्नति करते करते वह जङ्गम पशु हो गया। चार पैरों से चलनेवाले पशु से वह अपनी इच्छा के बल द्वारा दो पैरों से चलनेवाला मनुष्य हो गया। अब शायद, एक दिन, यही मानव-शरीर आकाश में क़िस्से कहानियों की परियों की भांति उड़ने लगेगा। इसी उपपत्ति के सहारे अमेरिका की हेलन विल्मैन्स नामक ग्रन्थ-कर्त्री ने मनुष्य का दीर्घायु—दीर्घायु ही क्यों अमर—हो सकना सिद्ध करने का प्रयत्न किया है! वाह क्या चमत्कार है! अध्यापक बसु ने तो अपनी किताब "रिस्पान्ज़ इन दी नानलिविङ्ग" (Respone in the non-living) में यह सिद्ध ही कर दिया है कि लोहे, सोने, आदि तक में भी जान है। फिर हम पशु-शरीर और वृक्षों में किसी प्रकार की समता को देखकर क्यों आश्चर्य करें?

पशु जो ख़ूराक खाता है उसका सारभाग ख़ून बनकर रुधिर-वाहक नलियों द्वारा उसके शरीर भर में फैल जाता है। उसीकी शक्ति से पशु इधर उधर कूदता फिरता है। पौधे की ख़ूराक रस-रूप में परिणत हो कर उसे हरा भरा रहने की शक्ति प्रदान करती है। पशु-शरीर का रक्त वृक्ष-शरीर का रस है। पशुओं के रुधिर-प्रवाह की भांति पौधों में भी रस-प्रवाह होता है। रस, जोकि वास्तव में पौधों का रक्त है, बड़े वेग से उसकी नलियों द्वारा प्रवाहित होता है। यह वेग, यह बल, उस वेग से कहीं अधिक है, जो हाथी की रुधिर-वाहक नलियों में रक्त प्रवाहित करता है। इङ्गलैण्ड के एक तत्व-वेत्ता ने एक बड़ी आश्चर्यकारक जाँच की थी। उसने एक बड़ी लम्बी नली को नये अंगूर की एक शाखा में, जिसे उसने पृथक् कर लिया था, पहना कर देखा तो मालूम हुआ कि यह रस ४४ फ़ीट ऊंचा चढ़ गया। फ्रांस के शारीरिक विज्ञान के ज्ञाताओं को यह बात बड़ी आश्चर्यकारिणी मालूम हुई। उन्होंने इस अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता का विश्वास न करके जब स्वयं आज़मायश की तब अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता की बात को ठीक पाकर वे चकित हो गये। डी कैनडोल नामक तत्ववेत्ता ने मालूम किया कि वह वेग जिससे कि पौधे की नलियों में रस चढ़ता है वायु के ढाई गुने दबाव के बराबर है। यह दबाव तौल में जल के पचासी फ़ीट ऊँचे सतून के बोझ के बराबर होता है!

अस्तु। रस प्रवाह में, जो वनस्पतियों में अदृश्य भाव से रहता है, एक बड़ी बलवती शक्ति मालूम हुई है। यह शक्ति बड़े से बड़े पशु के दृश्यमान रुधिर-प्रवाह की शक्ति से कहीं बढ़ कर है। अनेक शारीरिक-विज्ञान-वेत्ताओं ने लिखा है कि जिस वेग से घोड़े की जांघवाली अति विशेष रक्त-प्रवाहक नली में रुधिर प्रवाहित होता है, उससे पांच गुने वेग से, और जिस वेग से कुत्ते की उसी नली में ख़ून बहता है उससे सात गुने अधिक वेग से, अंगूर की नलियों में रस ऊपर को चढ़ता है। हृदय बड़े तीव्र वेग से रक्त-प्रवाहक नलियों में रुधिर प्रवाहित करता है। पर वह भी इतनी शक्ति नहीं रखता है जितनी शक्ति पौधों में रस को ऊपर चढ़ाने के लिये काम आती है।

इस लिए यह सिद्ध हुआ कि पौधों की वे नलियां जो मुटाई में बाल से भी कम हैं, जानवरों की उन नलियों से जो अंगुली से भी ज़ियादह मोटी हैं, अधिक तर शक्तिमती होती हैं। तत्ववेत्ता हेल्स ने यह जानना चाहा कि देखें कितनी शीघ्रता से यह रस चलता है। इसके लिए उसने पृथ्वी में एक गहरा गड्ढा खोद कर एक वृक्ष की छोटी सी जड़ को खोल दिया; फिर पानी से भरी हुई एक शीशे की नली में उसने उसको डाला। तब उस नली को उसने पारे में डुबो दिया। इसके बाद उसे मालूम हुआ कि आध इञ्च प्रति मिनट के हिसाब से पारा चढ़ रहा है।

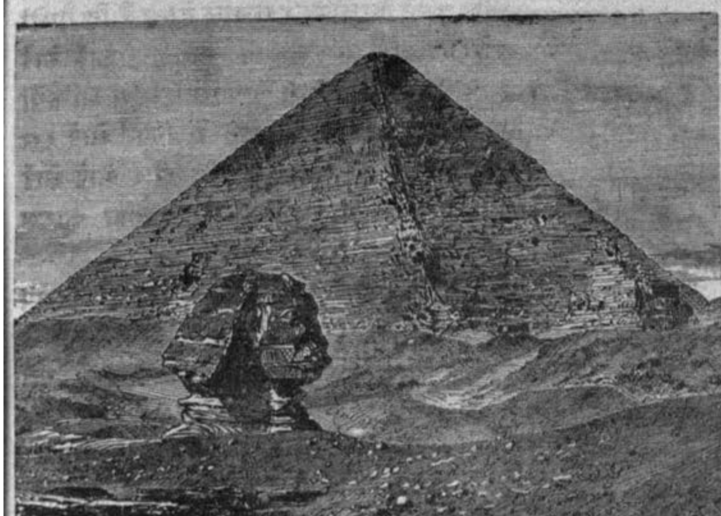
कई पैाधों में रस इतनी जल्दी बनता है और इतनी जल्दी बहता है कि थोड़ी ही देर में बहुत सा निकाल लेना कोई असाधारण बात नहीं है। Sugar maple (शुगर मेपल) नामक वृक्ष से, जो कनाडा देश के पहाड़ों पर बहुतायत के साथ उगता है, एक डोल रस प्रतिदिन निकलता है। कनाडा में जितनी शकर ख़र्च होती है उसका सबसे बड़ा हिस्सा इसी वृक्ष के रससे बनाया जाता है। वृक्ष में वहां वाले एक मोटे सूजे से दो चार इञ्च गहरा छेद कर देते हैं। उस छेद में वे एक नल लगा देते हैं। इस नल के द्वारा रस टपक टपक कर एक डोल में इकट्ठा हो जाता है। फिर इस रस को आग पर रख कर वे भाप के रूपमें उड़ा देते हैं। रस उड़ जाने पर कड़ाही के तले शकर बैठ रहती है। इसका रङ्ग भूरा होता है। फिर वे इसकी टिकियाँ बना लेते हैं। साल भर में एक से दो सेर तक शकर एक वृक्ष के रस से बनती है। इस रस को सड़ाने से एक प्रकार की अति उत्तम शराब भी तैयार होती है। गरम देशों में एक प्रकार की खजूर होती है। इससे बड़ी अच्छी बनी बनाई शराब प्राप्त होती है। इस देश में इस शराब को ताड़ी कहते हैं। ताड़ी और कुछ नहीं हैं, केवल शराब पैदा करनेवाली खजूर का रस है। यह खजूर पश्चिमी आफ्रीक़ा में पैदा होती है। इस रस जब निकलता है तब बेनशे का और मीठा होता है, परन्तु थोड़े ही घण्टों बाद उस की बड़ी नशीली शराब बन जाती है। एक वृक्ष से यह बहुत पैदा होती है और बहुत ख़र्च भी की जाती है। आफ्रीक़ा देश के हबशी अपनी तूँबियां इस वृक्ष के अधोभाग की शाखों की जड़ों में लटका देते हैं। वह बड़ी जल्दी इस रस से भर जाती हैं। ये शाखायें इसी काम के लिए, पैदा होने के थोड़े ही दिनों बाद, काट डाली जाती हैं। हमारे देशमें भी नीम का रस बहुत काम आता है। परन्तु यह कम पैदा होता है और केवल पुरानी नीमों से निकलता है। वनस्पतियों के रस-प्रवाह में बहुत ही ज़ियादह शक्ति होती है। रस भी उनमें बहुत ज़ियादह निकलता है। स्काट साहब का कथन है कि केवल वसन्त ऋतु में भूर्ज वृक्ष (Birch tree) से इतना रस निकलता है जो तैाल में उस वृक्ष के बराबर होता है।

ऐसी बातों को देखकर ख़याल होता है कि पैाधों में इस रस-प्रवाह का कारण क्या है? कोई कोई तत्ववेत्ता केवल शारीरिक या रासायनिक शक्तियों ही को इसका कारण बतलाते हैं। पर कोई रस प्रवाहक नलियों के आकर्षण को और कोई कोई शृङ्खलाबद्ध विद्युदाघात को भी इसका कारण मानते हैं।

परन्तु ये सारी युक्तियाँ केवल एक ही आक्षेप से धूल में मिल जाती हैं। यदि इन शक्तियों में से कोई शक्ति पैाधों के रस-प्रवाह का कारण होती तो शुष्क वृक्ष को, जिसके तन्तुजाल में कुछ फेर-फार न हुआ हो, इन शक्तियों के प्रयोग द्वारा फिर से हरा भरा कर देना कोई दुष्कर कर्म न होता। परन्तु आनन्द की बात है कि शारीरिक-विज्ञान-वेत्ताओं के मुकुट-मणि ब्रिशट ऐसे विज्ञान विशारद ऐसी ग़लती में नहीं पड़े। ब्रिशट का कथन है कि पैाधों के रस-प्रवाह का वही कारण है जो जानवरों के रुधिर-प्रवाह का है। डीकैनडोल के मत में पैाधों में रस के ऊपर चढ़ने का कारण प्राण होने से उसकी नसों का सिकुड़ना है। वनस्पति के रस-प्रवाह को अच्छी तरह देखने के उपरान्त अचिल रिचार्ड नामक पण्डित (Achille Richard) इस प्रवाह की शक्ति की समता कीड़ों के रुधिर-प्रवाह की शक्ति से करता है। एक जर्मन तत्ववेत्ता के मतानुसार, हम, सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा, पैाधे की नलियों को अपना रस ऊपर चढ़ाने के निमित्त सिकुड़ते हुए देख सकते हैं। यह तत्ववेत्ता इस सिकुड़ने का कारण पैाधों में प्राण होना बतलाता है। इतने प्रमाणों के सामने पैाधों में सजीवता मानने में आगा पीछा करने का कोई कारण नहीं। इस लेख में जो कुछ लिखा गया है उसकी सत्यता की

जाँच हर कोई सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा कर सकता है*। सूर्य्यनारायण दीक्षित।

सप्ताश्चर्य्य।



[मिश्र के पिरामिड नामक मीनार]

अङ्गरेज़ी अथवा योरप की दूसरी भाषाओं का विद्वान् कोई बिरला ही होगा जिसने "सप्ताश्चर्य्य" (Seven-Wonders) का नाम न सुना हो। लेकिन इनमें क्या क्या शामिल हैं, वे कहां कहां हैं और उनमें क्या विशेषता है, यह बहुत कम लोग जानते होंगे। "सप्ताश्चर्य्य"—यह नाम असल में ग्रीक विद्वानों का प्रसिद्ध किया हुआ है। वे इसमें इनको गणना करते थे।

१ मिश्र के पिरामिड।
२ बाबुल का शहर।
३ ज्यूपिटर देवता की मूर्ति।
४ इफीसस नगर में डायना देवी का मन्दिर।
५ मासोलस का मक़बरा।
६ अलैक्ज़ैंड्रिया के फैरो।
७ रोड्स नगर की विशाल मूर्ति।

इससे यह न समझना चाहिए कि इनके सिवा संसार में कोई और अद्भुत पदार्थ है ही नहीं; न यह, कि सबसे अधिक आश्चर्य्यजनक केवल यही हैं। ज़रा ध्यान देने से यह विदित होगा कि इनमें केवल मनुष्य की बनाई हुई वस्तुओं की गणना है। "नयागरा जल-निपात" के समान प्राकृतिक आश्चर्य्यों का कुछ ज़िक्र ही नहीं है। सप्ताश्चर्य्यों में केवल बहुत पुराने समय की चीज़ें गिनाई गई हैं। उस समय से अब तक, हज़ारों वर्ष में, मनुष्य ने जो अद्भुत अद्भुत रचनायें की हैं उनकी गिनती ही नहीं की गई। इन दो बातों के अतिरिक्त इस गणना में एक और दोष है। वह यह कि "सप्ताश्चर्य्य" नाम का प्रसिद्धकर्ता ग्रीस का एक विद्वान् था। इस कारण केवल ग्रीस अथवा उसके समीपवाले देशों की चीज़ें इस गणना शामिल हैं। पुराने समय के और और देशों के आश्चर्य्य–जैसे चीन की दीवार,

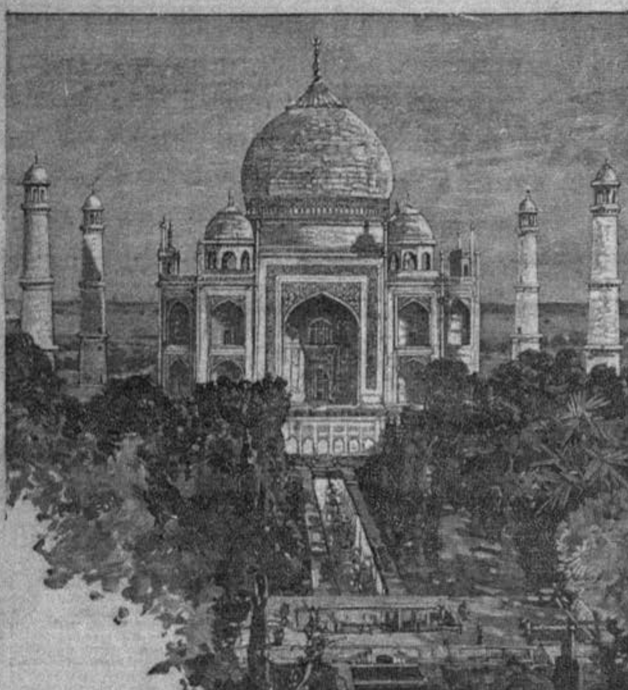


चीन की दिवार।

---

* "The Universe" नामक पुस्तक से अनुवादित।

यलोरा के गुफामन्दिर ; या उसकी अपेक्षा थोड़ा आधुनिक काल लीजिये तो, आगरे में ताजबीबी का रौज़ा इत्यादि, जो इन सातों में से कई एकों से कहीं बढ़कर हैं, गिनती में आये ही नहीं। संक्षेपतया, कहने का तात्पर्य यह, कि पाठक



ताजमहल।

कदापि यह न समझें कि, बस दुनिया में महा अद्भुत पदार्थ यही सात हैं ; और वे भी पुराने समय के ग्रीस इत्यादि के कारीगर बना गये सो बना गये ; न किसी और देशवालें में आश्चर्य्य-कारक पदार्थ बनाने की शक्ति रही और न आधुनिक मनुष्यों में ऐसा सामर्थ्य कि उनके समान वे कुछ कर सकें। बात केवल यह है कि, एक ग्रीक विद्वान ने जो जो चीज़ें देखी थी ; उनमें से सात* उसे बहुत अद्भुत जचीं। उनका हाल लिखकर उसने उनका, और साथ ही, अपना नाम प्रसिद्ध कर दिया। तथापि ये सातों चीज़ें भी बड़ी ही अद्भुत हैं। इस कारण उनका संक्षिप्त हाल अवश्य मनोरञ्जक होगा। आज उनमें से मिश्र के पिरामिडों का वृत्तान्त दिया जाता है।

पिरामिड ज्यामिति-विद्या की एक प्रकार की ठोस शकल का नाम है। उसकी बनावट यों होती है कि नीचे का भाग तो चैाड़ा, और जैसा जैसा ऊंचा होता जाता है वैसा ही तङ्ग, होता है। यह इमारत चैाकोन नीव पर या उससे कम या अधिक कोनेदार नीव पर भी उठाई जा सकती है*। परन्तु विशेषकर पिरामिड चैाकोन ही देखे जाते हैं।

जान पड़ता है, पूर्वकाल में, हर जगह के लोग इस प्रकार की इमारतें बहुत बनाते थे ; क्योंकि पिरामिड के आकार की इमारतें हिन्दुस्तान, मेक्सिको (अमेरिका में) इंग्लैण्ड, फ़्रांस इत्यादि और और देशों में भी पाई जाती हैं। मिश्र में तो सैकड़ों, बल्कि हज़ारों पिरामिड हैं। तमाम संसार के पिरामिडों में मिश्र के गिज़ा नामक स्थान के तीन पिरामिड बहुत प्रसिद्ध हैं। एक तो वे इतने बड़े हैं कि कोसों से पहाड़ के तुल्य दिखाई देते हैं। दूसरे उनके चारों ओर तो बालू का मैदान है। परन्तु स्वयं वे पत्थर के बने हैं। फिर पत्थर की अनेक शिलायें इतनी बड़ी और भारी हैं जिनका आजकल की बोझ उठानेवाली कलों से भी उठाया जाना कठिन है। पत्थर यहां कैसे लाये गये ? बिना किसी प्रचण्ड कल के सहारे वे इतनी उँचाई पर कैसे पहुंचाये गये ? इन बातों

* क़रीब क़रीब सभी मज़हबों और सम्प्रदायों में ७ का अङ्क कुछ अद्भुत प्रभावशाली समझा जाता है। इसीसे सात ही अद्भुत पदार्थ रक्खे गये हैं। पुराने ज़माने के ज्यौतिष में सात ही ग्रह गिने जाते थे। इसीसे सप्ताह सात दिन का हुआ। ब्याह में सात भांवरें होती हैं। और हर काम के लिए यह अङ्क बहुत ही शुभकारक समझा जाता है।

* गोल नीव पर भी पिरामिड होता है और वह कोन (cone) कहलाता है।

को सोच कर बुद्धि चक्कर खाने लगती है। यह बात भी दृष्टान्त देने योग्य है कि ये अद्भुत इमारतें उस समय यहां बनाई गईं थीं, जिस समय के कला-कौशल सम्बन्धी न कोई और चिन्ह ही मौजूद हैं, और न कोई ऐसी पुस्तकें ही हैं जिनमें उनका वर्णन हो। ये चार हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराने कूते जाते हैं, और २८०० वर्ष से तो किसी प्रकार कम नहीं। इतने पर भी इनके अन्दर कमरों मे जो रङ्गीन काम और बेल बूटे इत्यादि बने हुये हैं उनसे जान पड़ता है कि वे आज बनाये गये हैं। इनके अन्दर से सन्दूकों में भरी हुई जो लाशें निकली हैं वे ऐसी अच्छी और परिपूर्ण दशा में हैं मानों वे कल की हैं। किस मसाले से यह अपूर्व बात पैदा की गई, इसका पता आधुनिक वैज्ञानिकों को कुछ नहीं लगता। इन लाशों को देखने से यह भी साबित होता कि उस काल के मनुष्य शरीर में आजकल के मनुष्यों से कुछ अधिक लम्बे चौड़े या अधिक हृष्ट पुष्ट न थे। हमी लोगों की तरह वे भी साधारण आदमी थे। इन पिरामिडों का सा असाधारण काम केवल अतुल श्रम और उद्योग का परिणाम है। सच है, कौन सा कार्य ऐसा कठिन है जो मनुष्य को श्रम से साध्य न हो?

ये पिरामिड नाइल नदी के पानी से घिरे हुए एक त्रिकोणाकृति भूमि पर बने हैं। पहले पहल वे केरो बन्दर से, यानी ५ मील के फ़ासिले से, दिखाई पड़ते हैं। दूर से उन्हें देखने में, एक अद्भुत प्रकार का एक तरफ़ झुका हुआ एक पहाड़ सा दिखाई देता है; मानों एक तरफ़ की नीव कुछ धँस गई हो। जब नज़दीक पहुँचो तब नीव, एक दूसरे से पृथक् देख पड़ती है और पिरामिडों की छोटाई बड़ाई क्रमशः मालूम होने लगती है। इनके लिए मिश्र के उत्तरी पहाड़ों से पत्थर लाये गये थे। वे पहाड़ खुश्की से ६०० मील और नदी की राह से ७०० मील दूर हैं! अनुमान किया जाता है कि नदी ही की राह से पत्थर लाये गये होंगे; क्योंकि खुश्की से लाना तो, एक प्रकार, बिलकुल ही असम्भव जान पड़ता है।

पहले पहल इनका हाल ग्रीस देश के प्रसिद्ध विद्वान हेरेडोटस ने अपने जगत् प्रसिद्ध इतिहास में लिखा है। यह इतिहास, उसने, ईसा के ४४५ वर्ष पहले, लिखा था। अतएव इस इतिहास को बने क़रीब ढाई हज़ार वर्ष हो चुके! इससे पुराना इतिहास और किसी भाषा में नहीं पाया जाता। इस ग्रन्थ में प्रशंसनीय बात यह है कि लेखक ने हर स्थान में यह साफ़ तौर पर लिख दिया है, कि कौन बात उसकी आंखों देखी है, कौन उसने किसके मुंह से जानी या सुनी है और कौन किन किताबों से उसने ली है। इतिहास इसीको कहते हैं; और हिरेडोटस ही इतिहास का जन्मदाता है। इसीसे वह योरपीय विद्वानों में इतिहास-पिता (Father of history) नाम से प्रसिद्ध है। यह इतिहास वास्तव में तो ग्रीक और फ़ारस वालों के युद्ध का हाल है; परन्तु इसमें उस समय के प्रसिद्ध देशों और उनके निवासियों का भी संक्षिप्त विवरण पाया जाता है।

हिरेडोटस से मेम्फ़िस नगर के पुजारियों ने बतलाया कि, सब से बड़ा पिरामिड चिआप्स नामक मिश्र के बादशाह ने अपनी क़ब्र के लिये ईसा के क़रीब ९०० वर्ष पहले बनवाया; एक लाख आदमी, २० वर्ष तक, उसके बनाने में लगे रहे; और चिआप्स की लाश पिरामिड के नीचे एक कमरे में रक्खी गई। उन्होंने यह भी बतलाया कि इस कमरे के चारों ओर एक तहख़ाना है जहां नाइल नदी का पानी ज़मीन के नीचे नीचे एक सुरंग से जाता है।

दूसरा पिरामिड सिफ़रन नाम के राजा ने बनवाया। यह चिआप्स का भाई था और उसके बाद गद्दी-नशीन हुआ। तीसरा पिरामिड पिसे-रिनस नामक, चिआप्स के पुत्र, ने बनवाया।

बड़े पिरामिड की बुनियाद ५५०,००० मुरब्बा फ़ीट है। वह चौकोन बना है और एक एक दीवार

७६५ फ़ीट, यानी २५५ गज़, लम्बी है। उँचाई उसकी ४७४ फ़ीट, अर्थात् १५८ गज़, है। असल में उसकी उँचाई ५०२ फ़ीट थी; मगर दो एक खण्ड उसके गिर गये। पिरामिड की बनावट यों है कि एक के ऊपर एक चबूतरे बनाये गये हैं; इस प्रकार से कि ऊपर वाला चबूतरा अपने नीचे वाले से कुछ छोटा है। इस कारण, देखने में वह सीढ़ियों की एक क़तार सी मालूम होती है। इस प्रकार की सब २०३ सीढ़ियां हैं। सीढ़ियों की उँचाई जितना ऊपर जाइए घटती जाती है, और ज़्यादा से ज़्यादा ४ फुट ८ इञ्च और कम से कम १ फुट ८ इञ्च है। किसी किसी पत्थर के टुकडे की लम्बाई तीस तीस फुट है। इन पत्थरों की तराश और इनपर पालिश ऐसा है कि उसे देखकर आजकल के वैज्ञानिक चक्कर में आते हैं। पिरामिडों पर जब सूर्य्य की रोशनी पड़ती है तब दूर से बर्फ़ का पहाड़ सा दिखाई पड़ता है। यह चमत्कार जिस मनुष्य ने एक बार देख लिया वह आमरण उसे कभी नहीं भूलेगा। हिरेडोटस को इनके बनाने की तरकीब यह बताई गई कि, कारीगरों ने एक बहुत सादी लकड़ी की कोई कल बनाई थी। पहला चबूतरा बन जाने पर उस चबूतरे पर रक्खी हुई कल पर पहले पत्थर चढ़ाया गया। दूसरा चबूतरा बन जाने के बाद उस पर कल चढ़ाई गई और उसके द्वारा दूसरे से तीसरे पर, तीसरे से चौथे पर और इसी तरह क्रमशः चढ़ाते चले गये। पाठक, ज़रा ध्यान तो दीजिये। तीस तीस फ़ीट की विशाल शिला एक लकड़ी की कल से दो दो सौ गज़ ऊपर चढ़ाना; जोड़ाई ऐसी कि कहीं ज़रा भी फ़र्क़ न आने देना; सिमेण्ट ऐसा कि बिलकुल पत्थर से पत्थर को मिला देना! कैसा अद्भुत काम है! कोई पत्थर कहीं भी ज़रा टेढ़ा मेढ़ा ऊँचा नीचा नहीं। बिना विशेष ध्यान से देखे जोड़ाई का कहीं पता ही नहीं लगता।

दूसरे, और कुछ छोटे, पिरामिड की नीव सब तरफ़ ६८४ फ़ीट, याने २२८ गज़, और उँचाई ४५६ फ़ीट है। तीसरा पिरामिड उँचाई में १७४ फ़ीट और लम्बाई-चौड़ाई में हर तरफ़ ३३० फ़ीट है। यह पिरामिड है तो सबसे छोटा, मगर सब से अधिक ख़ूबसूरत पहले यही था। यह, एक क़िस्म के पत्थर से, जो केवल एक ख़ास जगह होता है, ढका हुआ था। यह बात प्लीनी नामक एक रोम के इतिहासकार की किताब से मालूम पड़ती है। पर अब तो इस के ऊपर का पत्थर बहुत कुछ निकल गया है। यहां पर और भी कई एक छोटे छोटे पिरामिड हैं।

अनुमान किया जाता है कि मिश्र के राजाओं का यह क़बरिस्तान था। और जिस राजा ने जितने दिन राज्य किया उतना ही बड़ा पिरामिड वह बनवा सका। जैसे मुसलमान मक़बरा बनवाते हैं वैसे ही, जान पड़ता है, मिश्र के पुराने निवासी पिरामिड बनवाते थे; क्योंकि वहां जगह जगह सैकड़ों पिरामिड मौजूद हैं। इनमें किसी किसी में ईसा के १४–१५ सौ वर्ष पहले तक के निशान पाये जाते हैं।

पहले यह अनुमान किया जाता था कि पिरामिड बिलकुल ठोस हैं। परन्तु अब, पुरातत्व के विद्वानों ने खोदकर, उनमें रास्ता ढूंढ निकाला है। बड़े पिरामिड का रास्ता नीव से ४७ फ़ुट ऊंचे पर मिला है। इस रास्ते का दरवाज़ा बहुत छोटा, ३१ फ़ीट वर्ग है; और अन्दर की तरफ़ १०० फ़ीट तक कुछ ढलुआँ जा कर फिर दाहिनी तरफ़ मुड़ा है। यहां से फिर चढ़ाई शुरू होती है। इस चढ़ाई पर बहुत दूर जाकर रानी का कमरा मिलता है। यह कमरा १७ फ़ीट लम्बा, १७ फ़ीट चौड़ा और १२ फ़ीट ऊंचा है। इससे एक रास्ता और गया है। उसपर १२० फ़ीट की चढ़ाई तै करके राजा का कमरा मिलता है। यह कमरा बड़ा ही आलीशान है। यह ३७ फ़ीट लम्बा, १७ फ़ीट चौड़ा और २० फ़ीट ऊंचा है। इसकी दीवारें लाल सङ्गमरमर की हैं; उनपर बहुत ही अच्छा पालिश है और हर एक पत्थर का टुकड़ा नीव से छत तक



त्रिवाङ्कोड़ के महाराजा साहब ।



कालीकट के ज़मोरिन साहब की धर्म्मपत्नी।

बराबर एकसाँ है। उसमें कहीं जोड़ नहीं। छत ख़ूब चिकने लाल सङ्गमरमर की शिलाओं की है। यह शिलायें भी बेजोड़ हैं। इस कमरे के एक सिरे पर ७ फ़ीट ४ इञ्च लम्बा और ३ फ़ीट चौड़ा लाल पत्थर ही का एक ताबूत है। इसीमें उस ज़माने के सब से बड़े राज्य का महाराजा दफ़न किया गया था। हा! आज उसकी हड्डियां तक वहां नहीं हैं!

१८१७ ई० में कप्तान कविग्लिया नामक एक इटाली निवासी पुरातत्ववेत्ता ने बड़े पिरामिड के अन्दर की ख़ूब ही जांच परताल की। बड़ी मुशकिलों से उसने एक तीसरा कमरा ढूंढ़ निकाला। यह कमरा ६६ फ़ीट लम्बा, २७ फ़ीट चौड़ा और १५ फ़ीट ऊंचा है। इसके बीच में ५ फ़ीट गहरा एक गढ़ा सा निकला; परन्तु उसमें कोई लाश नहीं निकली।

इन सब कमरों की दीवारों पर रोमन और अरबी नाम खुदे हुए हैं, जिससे जान पड़ता है कि योरोपीय विद्वानों से पहले रोमन और अरब लोगों ने इन कमरों में प्रवेश किया था।

चिआप्स का पिरामिड इतना बड़ा है कि अगर उसके ७४२२ टुकड़े किये जायं तो उसका बड़ा कमरा एक टुकड़े में आ जाय। फिर, अगर, बीच की दीवारों की चौड़ाई इत्यादि के लिये गुञ्जाइश निकाल लीजिये तो उसमें ऐसे ऐसे तीन हज़ार सात सौ कमरे हो सकते हैं! इसी से अनुमान होता है कि शायद इसमें हज़ारों ही कमरे और होंगे, क्योंकि इसके अन्दर सब ठोस होने के लिये कितने सामान की ज़रूरत होती, इसका अन्दाज़ा करना ही बहुत मुश्किल बात है।

११९६ ई० में मिश्र के मुसल्मान सुलतान सलादीन के बेटे ने एक छोटा सा पिरामिड खुदवाना आरम्भ किया। उसके सामान से एक और इमारत तय्यार कराने की ग़रज़ से ऐसा किया गया था। एक बड़ी सेना ८ महीने तक खोदती रही। उसने खोद खोद कर पत्थर का एक ऊंचा पहाड़ सा लगा दिया; परन्तु वह पिरामिड आज तक जैसा का तैसा मौजूद है। उस खोदखाद से उसके आकार प्रकार को ज़रा भी हानि नहीं हुई।

दूसरे और तीसरे पिरामिड में भी कमरे मिले हैं। दूसरे पिरामिड के कमरे में, जिसकी लम्बाई ४६ फ़ीट ३ इञ्च, चौड़ाई १६ फ़ीट ३ इञ्च, उँचाई २३ फ़ीट ६ इञ्च है, एक ताबूत मिला। उसकी हड्डियां भली प्रकार जाँचने से बैल की मालूम पड़ीं। यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि मिश्र के पुराने निवासी बैल पूजते थे। इन हड्डियों का मिलना शायद इसी पूजन से सम्बन्ध रखता हो। इस कमरे में अरबी का एक लेख मिला है, जिससे जान पड़ता है कि मिश्र का एक अरब बादशाह इसमें घुसा था।

तीसरे पिरामिड का रास्ता पहले पहल हौवर्ड वाईज़ नामक एक अंग्रेज़ ने, १८३४ ई०, में ढूढ़ निकाला और वहां से राजा मेसीनिस का कफ़न और लाश, ३५०० वर्ष पड़े रहने के बाद, विलायत के अजायब घर में उसने लाकर रक्खा।

सब पिरामिडों के अन्दरूनी कमरों में मिश्र की पुरानी लिपि में कुछ लेख हैं। इस लिपि को हरलोग्राफ़ी कहते हैं। उसमें अक्षरों के स्थान में तसवीरें सी होती हैं। योरप के विद्वानों ने बड़े श्रम से इन लेखों का मतलब बैठाया है। उससे मिश्र के पुराने इतिहास का बहुत कुछ पता लगा है। यह काम कितना कठिन था यह इस बात से प्रकट होगा, कि इस भाषा की कोई किताबें मौजूद नहीं; और इस समय यह न कहीं लिखी जाय, न बोली जाय। इन पिरामिडों के अन्दर रोशनी तो बिलकुल पहुँच ही नहीं सकती और हवा का भी ज़रा कठिनाई से गुज़र है। ये विद्याव्यसनी विद्वान मशालों की रोशनी से टटोलते टटोलते, और कूड़ा कर्कट साफ़ करते करते कमरों में पहुंचते, वहां उस बेजानी हुई भाषा को वे नक़ल करते, या उसका फ़ोटो लेते, और फिर बाहर आकर बरसों उसका मतलब निकालने का प्रयत्न करते थे! बहुतों ने तो अपना स्वास्थ्य इसी

में ग़ारत कर दिया; और मिश्र के इतिहास के बारे में अगर कुछ भी वे ठीक ठीक दुनिया को बता सके तो अपने को उन्होंने उतने ही कृतकृत्य समझा। यही विद्या की सच्ची आराधना है। इस कार्य में इङ्गलैण्ड, जर्मनी और फ्रांस के विद्वानों ने विशेष चेष्टा की। जैसा कह चुके हैं, इन लोगों के पहले रोम और अरब के निवासी वहां गये थे। परन्तु वहां अपना तुच्छ नाम खोद आने के सिवा इनको यह न सूझी कि कुछ पुराना इतिहास खोजने का वे प्रयत्न करें। देखिए विद्यादेवी की सेवाही के प्रभाव से आज कल अंगरेज़, फ्रेञ्च और जर्मन आदि उस सैाभाग्य और सभ्यता को पहुंचे हैं, जो न किसी देश को कभी नसीब हुई, और न कभी किसी की कल्पनाशक्ति उसका अनुमान कर सकी।

ये पिरामिड मनुष्य के श्रम के, सचमुच, महा अद्भुत उदाहरण हैं। पर खेद यह सोच कर होता है कि सारा श्रम एक व्यर्थ काम में उपयोग किया गया। हिरिडोटस ने लिखा है कि इस काम में बड़े बड़े यञ्जिनियरों के अतिरिक्त, एक लाख मज़दूर ३० वर्ष तक लगे रहे। हर तीसरे वर्ष ये लाख आदमी निकाल कर और एक लाख नये लगाये जाते थे। इन पिरामिडों पर स्वयं लिखा है कि कई हज़ार दिरम इन मज़दूरों को केवल प्याज़ रोटी देने में लगता था। उस ज़माने के दस्तूर के मुताबिक़ ये बेचारे सब क़ुली ज़बरदस्ती पकड़े हुए बेगारी थे, और कोड़ों के बल काम करते थे। यह सारा ज़मीन आसमान क्यों एक किया गया? जिसमें एक मुर्दा ऐसी जगह दफ़न हो जहां किसी का गुज़र न हो!!!

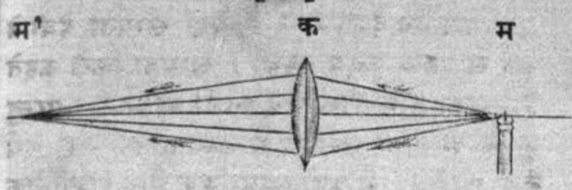
पिरामिडों में शिल्पकैाशल की पराकाष्टा है। उससे बढ़कर काम ध्यान ही में नहीं आसकता। उसकी बराबरी भी करना आज कल असम्भव सा है। इनके अन्दर मनुष्यों, जानवरों और पदार्थों की पत्थर पर खुदी हुई हर क़द की असंख्य मूरतें हैं। दीवारों की मूरतें ऐसी सुन्दर बनी हुई हैं मानों कल बनाई गई हैं। भीतरी भागों की दीवारों तक के पत्थर, पालिश और चिकनाई में, अद्वितीय हैं।

मिश्र उन देशों में से है जहां सभ्यता देवी ने सब से पहले क़दम रक्खा। सभ्यता किसे कहते हैं, इसका ठीक ठीक अर्थ करना कठिन है। परन्तु पुराने समय के सम्बन्ध में सभ्यता का यह अर्थ लेना चाहिये, कि जहां सामाजिक और राजनैतिक नियमों से कुछ कुछ काम होने लगा था; और लोग क़सबे या गांव बसा कर उनमें रहने लगे थे; अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सब लोग पृथक पृथक समाजों में बँट गये थे, अर्थात्, बढ़ई, लोहार, जुलाहा, पुजारी इत्यादि पेशे हो गये थे। जिस देश के अधिकांश लोग केवल प्याज़ और रोटी पर गुज़र करते थे और आधे नङ्गे रहते थे; जहां बेगारियों से कोड़े के बल काम लिया जाता था; जहां बादशाह को अधिकार था कि जिसका माल या जिसकी स्त्री वह चाहै छीन ले; जहां गुलामों का व्यापार होता था और उनकी जान सर्वथा मालिक के हाथ में थी; जहां बैल और दूसरे जानवरों की पूजा बड़ी धूमधाम से की जाती थी; वह देश कहां तक सभ्य था, यह सोचने की बात है। हां उस समय के उन यूरप निवासियों की अपेक्षा वे ज़रूर सभ्यथे जो बन्दरों की तरह बिलकुल नङ्गे रहते थे; हर मनुष्य शिकार करके उसे ही खा जाता था; खाल निकाल कर अपना ओढ़ना बनाता था; दरख्तों की खोहों या ज़मीन में गड्ढों में घुस रहता था और हमेशा आपस में मारकाट किया ही करता था। न कोई सामाजिक नियम था; न कोई राजा था; न कोई प्रजा थी। अस्तु। मिश्र के प्राचीन निवासी सभ्य रहे हों, या नहीं, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि पिरामिड बनानेवालों के समान पुरातन लोगों के अद्भुत और आतङ्कजनक शिल्पकार्य को देखकर आश्चर्य अवश्य होता है।

गिरिजादत्त वाजपेयी।

आँख।

[३]



(चित्र ६)

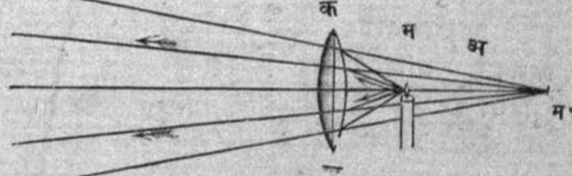
क ख ताल। म प्रकाश का संयोगी केन्द्र म¹ और म¹ का म है।

यहां 'म¹' को म का संयोगी केन्द्र कहना पड़ता है, अर्थात् यदि मोमबत्ती 'म¹' पर हो तो छाया चित्र 'म' पर और वह 'म' पर हो तो 'म¹' पर होगा। ऐसी नाभियों की कोई संख्या नियत नहीं। उनके लिए यही नियम है कि आलोक का पदार्थ अंशुनाभि के जितना समीप हो, उसका संयोगी केन्द्र उतना ही दूर होगा–"विपरीते विपरीतम्"। उपपत्ति यह है कि पदार्थ से आनेवाली किरणें ज्यों ज्यों अधिक केन्द्रापसारी होती जायँगी त्यों त्यों उनकी छायाकिरणें अधिक केन्द्रापसृत होकर दूर पर मिलेंगी।

(३) अब कल्पना कीजिए कि 'म' मोमबत्ती तालके समीप आते आते अंशुनाभि पर आ गई। मैं (१) में जो कह चुका हूं उसके अनुसार इसमें से निकलनेवाली किरणें ताल के पार जाकर समानान्तर हो जायँगी और कहीं भी उनका चित्र न बनेगा। वास्तव में अनन्तता और अंशुनाभि ये दोनों (२) के अनुसार परस्पर संयोगी केन्द्र हैं; अनन्तता से आई किरणें अंशुनाभि पर मिलती हैं और अंशुनाभि से चली हुई अनन्त दूरी पर मिलती हैं। चित्र ५ देखिए।

(४) अब तक हमने जिन नाभियों वा चित्रों का वर्णन किया है वे सच्चे हैं अर्थात् जिधर से ताल पर किरणें आती हैं उसके दूसरी ओर कागज़ वा परदा लगाने से वे दिखाई देती हैं। किन्तु, यदि आलोक का पदार्थ अंशुनाभि और ताल के बीच में आ जावे तो और ही तमाशा होगा; अर्थात् झूठी नाभि बनेगी। हम देखते आये हैं कि किरणें ज्यों ज्यों ताल के समीप आती गईं, त्यों त्यों केन्द्र से छायाकिरणों की अपसारण की मात्रा बढ़ती गई। यहां तक कि अंशुनाभि के प्रकाश की किरणें समानान्तर हो गईं। अब अधिक समीप आने से बाहर निकलनेवाली किरणें और भी केन्द्रापसृत होंगी (चित्र ७) देखिए। अतएव चित्र बनने के बजाय देखनेवाला यह समझेगा कि ये किरणें 'म' से न आकर 'म¹' से आई हैं, जहां पर अपसर्पिणी रेखायें बढ़ाने से मिलती हैं। यह भ्रममात्र है; यह चाक्षुष छल है।

तो उभयोन्नतोदर तालके ये गुण हुए—(१) धुरी के समानान्तर रेखाओं का सच्चा चित्र अंशुनाभि पर और अंशुनाभि से चलनेवाली किरणों का चित्र, दूसरी ओर निकल कर, अनन्त दूरी पर बनता है। (चित्र ५) (२) अंशुनाभि से दूरके पदार्थों का चित्र दूसरी ओर अंशुनाभि के समीप, और समीप के पदार्थों का दूर पड़ता है। ऐसी नाभि संयोगी केन्द्र कहलाती है (चित्र ६) (३) अंशुनाभि और ताल के बीच के पदार्थों का चित्र झूंठा, और जिधर पदार्थ होता है उधर ही, बनता है। (चित्र ७ को नीचे देखिए) अब तक आलोक को एक बिन्दु से आता



चित्र ७

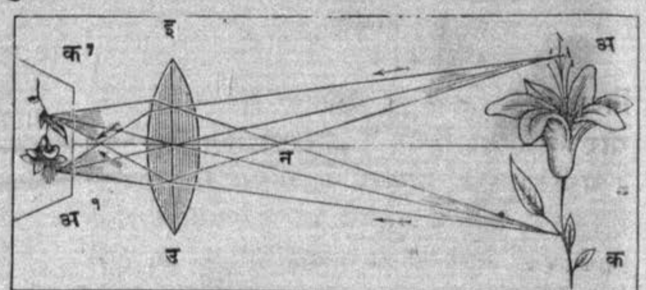
क ख ताल। म मोमबत्ती, अंशुनाभि भ और ताल के बीच में है। इससे झूठा चित्र म¹ बनता है।

मान कर इस विलक्षण ताल के गुण समझाये गये हैं। अब मान लीजिए कि आलोकदायक पदार्थ

गणितबिन्दु न हो कर कोई बड़ा पदार्थ है। पहले मोमबत्ती के आलोकबिन्दु ही के हम देख रहे थे; उस समय यदि हम ध्यान देते तो स्वयं मोमबत्ती के भी चित्र बनते हुए देखते। अस्तु, जिन पाठकों ने बिन्दु-चित्र के ध्यान से पढ़ा है वे पदार्थ-चित्र को भी ठीक ठीक समझ जायँगे।

(१) समानान्तर किरणों का आना सूर्य से वा किसी ऐसे ही विप्रकृष्ट पदार्थ से हो सकता है। अतएव अंशुनाभि पर बना चित्र किसी बिन्दु की नहीं किन्तु सूर्य की मूर्त्ति है। यह चित्र रङ्ग में और तेज में भी सूर्य के समान ही है। चित्र काच के समीप होने के कारण वह छोटा है और अपनी समीपता के अनुसार तेज रखता है। इतना और जान लीजिए कि यह चित्र उलटा है, किन्तु सूर्य के गोल होने से उलटेपन से कोई क्षति नहीं। विशेष हाल पहले कहा ही गया है।

(२) यदि कोई पदार्थ किरणाकर्षक ताल के सामने प्रधान धुरी से दूर रक्खा जाय तो तालके दूसरी ओर परदा डालने से उसी पदार्थ का उलटा चित्र दिखाई देगा। रङ्ग, ढङ्ग और सफ़ाई में यह बहुत ही ठीक उतरता है; यह पदार्थ की ठीक नक़ल है; इसमें दोष है तो यही कि वह उलटा है। इसकी बनावट समझना बहुत सहज है। नाभियों के विचार में प्रधान धुरी के विषय में जो कहा गया है, गौण धुरी के विषय में भी वही सब सच है। पहले आलोकदायक बिन्दु को प्रधान धुरी पर मानकर मीमांसा की गई थी, किन्तु यहां कई गौण धुरियों पर कई आलोकदायक बिन्दु हैं। चित्र ८ पर ध्यान देने से किरणों के मार्ग खब साफ दिखाई देंगे। प्रत्येक धुरी गुलाई के केन्द्र में होकर जाती है; अतएव प्रकट है कि जिस धुरी का एक सिरा ऊपर होगा उसका सिरा ताल में हो कर निकलने के बाद नीचे जायगा। अतएव 'अ' बिन्दु की सब किरणें गुलाई के केन्द्र में होकर उस बिन्दु से आने वाली धुरी के दूसरे सिरे पर 'अ' में कहीं होगी। अर्थात् अ' 'अ' का संयोग केन्द्र, अर्थात् चित्र है। योंही 'क' का चित्र 'क' पर बनता है। अब देखिए 'अक' पदार्थ के प्रत्येक बिन्दु का चित्र (संयोगी केन्द्र) अपनी अपनी धुरी पर बन गया अर्थात् अ' क' छोटा और उलटा चित्र बन गया। छोटा इसलिए कि पदार्थ की अपेक्षा ताल के वह अधिक समीप है और उलटा इसलिए कि गौण धुरियां पदार्थ और उसके चित्र के बीच में ताल की गुलाई के केन्द्र पर परस्पर काटती हैं।



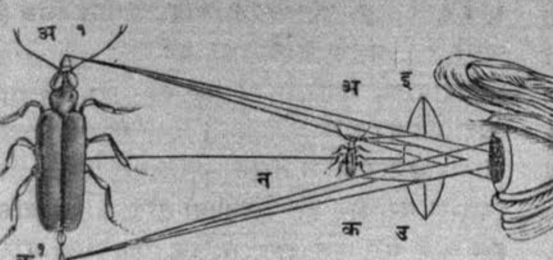
चित्र ८

इ उ ताल। न अंशुनाभि।

अ क पदार्थ का उलटा छायाचित्र अ' क'

कोई यह न समझे कि उन्नतोदर ताल में उलटा सच्चा चित्र पदार्थ से छोटा ही होता है; नहीं यदि पदार्थ समीप हो तो चित्र बड़ा भी हो सकता है। संयोगी केन्द्रों के परस्पर सम्बन्ध याद रखने से जान पड़ैगा कि यदि चित्र ८ में वास्तव पदार्थ अ' क' होता तो उससे निकलकर किरणें पहले की तरह मार्ग पर चलती हुई 'अक' पर बड़ा चित्र बनातीं। उन्नतोदर ताल पास के पदार्थों का उलटा चित्र दूर और दूर के पदार्थों का उलटा चित्र समीप डालते हैं।

यह सिद्धान्त विज्ञानशास्त्र में बहुत काम देता है। इन सच्चे चित्रों के अतिरिक्त ये ताल झूठे चित्र भी बनाते हैं। जब पदार्थ ताल और अंशुनाभि के बीच में होता है तब झूंठा चित्र वैसेही बनता है जैसे चित्र ७ में उपकेन्द्र वा झूंठी नाभि बन गई थी। चित्र ९ को देखने से प्रतीत होगा कि पदार्थ 'अक' की किरणें बाहर

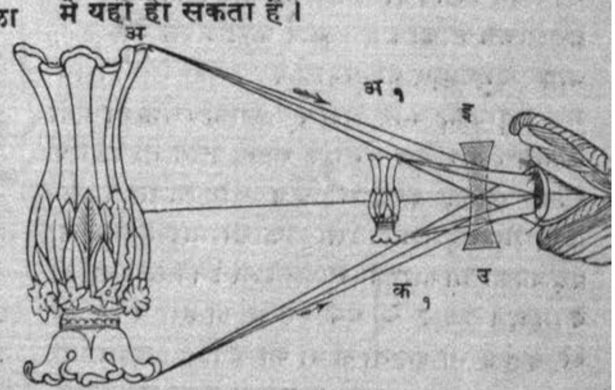


चित्र ९

इ उ ताल। न अंशुनाभि
अ क पदार्थ का सीधा, बड़ा, झूंठा,
चित्र अ१ क१।

निकलती बेर ताल से टकराती हुई जब दूसरी ओर निकलती हैं तब वे अपसारिणी बन जाती हैं अर्थात् उलटे गोपुच्छ के आकार में हो जाती हैं। उनके आंख में पहुंचने पर यह भ्रम होता है कि किरण जाल 'अ' से न चल कर अ' से चला है जहां कि बढ़ाने पर यह मिल जायगा और जो इस अवसर्पि-किरण-जाल का शिखर है। अतएव 'अक' पदार्थ का बढ़ा हुआ चित्र अ१ क१ दिखाई देता है। यह चाक्षुष भ्रम ही है। यह न परदे पर देखा जा सकता है और न वास्तव में ही। वास्तव चित्र सदा उलटा होता है किन्तु उसके विरुद्ध यह सदा सीधा और बड़ा होता है। सीधा इस लिये होता है कि पदार्थ से आनेवाले किरण मुड़ कर भी आंख तक आते आते परस्पर नहीं काटते; और बड़ा इसलिए कि यह चित्र 'अ' 'क' में होकर जानेवाली गौण धुरियों के सम्पातबिन्दु से पदार्थ की अपेक्षा अधिक दूर है।

अवनतोदर तालों की भी दो चार बातें सुन लीजिए। पहले कह चुके हैं कि नतोदर ताल की मुटाई बीच में बहुत छोटी होती है। उन्नतोदर काच में दोनों पार्श्वों का एक दूसरे की ओर झुकाव केन्द्र से छोरों की तरफ बढ़ता जाता है; किन्तु यहां उलटी बात है। इसीलिए फल भी उलटा है। अर्थात् उन्नतोदर ताल किरणों को दो बेर उसी तरफ़ को मोड़ कर प्रधान धुरी की ओर केन्द्राकृष्ट करते हैं। वैसेही ये दो बेर मोड़कर केन्द्र से अधिक दूर कर देते हैं। चित्र १० देखिए। ताल में होकर जानेवाली किरणें दो दफ़ा मुड़ कर आधार की ओर खिच आती हैं। उन्नतोदर ताल में आधार बीच में और नतोदर में ऊपर होता है। इन सब पहले कही हुई बातों को याद करके कह सकते हैं कि पदार्थ "अ क" से आनेवाली किरणें दो बेर मुड़ कर अधिक अपसृत हो जाती हैं। इस मोड़ से यह फल हुआ कि किरण जाल "अ१" बिन्दु से आता हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार क से आनेवाली किरणें "क१" में आती ज्ञात होती हैं। फल यह हुआ कि एक छोटा चित्र असत्य अ१ क१ पर दिखाई देता है। यह चित्र असत्य है और गुलाई के केन्द्र के पास होने से छोटा है। नतोदर ताल में यही हो सकता है।



चित्र १०

इ उ ताल
अ क पदार्थ का छोटा झूठा चित्र अ१ क१

तालों के बारे में जो कुछ कहना था हम कह चुके। जो कुछ है उससे आंख से सम्बन्ध नहीं और उसके लिखने का यह स्थान भी नहीं है। तथापि जिन तालों ने इतनी देर तक हमारे साथ रह कर ज्ञानोपदेश दिया उनसे इतनी जल्दी बिदा भी नहीं हो सकते। अतएव इतना और जान लीजिए कि ताल अपने गुणों से हम को सहस्रों काम देते हैं; और वैज्ञानिक उनके गुणों का बखान कर यश लेते हैं।

उन्नतोदर ताल सूर्य की किरणों की गर्मी आकृष्ट करके जलाने का काम देते हैं। यदि भरी हुई बन्दूक़ पर उनको यों रख दीजिए कि बारूद उनकी अंशुनाभि पर हो तो मध्यान्हकाल में वे "फायर" भी कर देते हैं। पानी भरे हुए गोल काच के घरके अन्दर रक्खी हुई मछलियां मर जाती हैं। समुद्र में जो रोशनीघर होते हैं उनमें दीपक के चारों ओर समोन्नत ताल यों रक्खे रहते हैं कि दीपक उनकी अंशुनाभि में हो। अतएव ये काच आलोक की किरणों को समानान्तर करके दूर दूर तक प्रकाश का प्रतिस्फलन कर देते हैं। समीप रक्खे हुए छोटे पदार्थ का बड़ा चित्र बताने के लिए ख़ुर्दबीन का और दूर के पदार्थों का चित्र समीप बताकर दूरबीन का काम भी यही काच देते हैं। मैजिक लैण्टर्न में भीतर रक्खे हुए छोटे पदार्थों का बाहर की ओर यही बड़ा चित्र दिखाते हैं। और फोटोग्राफ केमेरा के बाहर रक्खे हुए बड़े पदार्थ का उलटा छोटा चित्र, मसालेदार काचपर डाल कर, छाया चित्र भी यही बना देते हैं। भूत प्रेतों के घटते बढ़ते चित्र; एक आकार के कई तरह के चित्र और तड़ित् फोटो; ख़ुर्दबीन में बाल को सोटे कासा और मच्छर को पेड़ कासा आकार; दिखा देना भी इन तालों का ही काम है। जिस चाक्षुप प्रत्यक्ष का हम वर्णन कर रहे हैं वह भी इन तालों ही की कृपा है। बुड्ढे और जवानों के चश्मे, जिनसे प्राकृतिक ताल की उपयोगिता बढ़ती जाती है, इन्ही तालों से बनते हैं।

जब पाठक तालों के विषय में इतनी बातें जान गये हैं तब यह समझना कुछ भी कठिन नहीं है कि "आंख" एक प्रकार का "केमेरा आवसेक्यूरा" है। आंख में वही प्रक्रिया होती है जो चित्र १ और चित्र २ में दर्शित हैं। बाहर के पदार्थों की किरणें आँख के काच में हो कर बीच में परस्पर काटती हुई रेटिना रूपी पर्दे पर उलटा छोटा सच्चा चित्र बनाती हैं। यहां तक पदार्थ विज्ञान का काम है। जब यह उलटा चित्र रेटिना पर पड़ता है तब वहां पर पदार्थ का प्रकम्पन स्नायुओं के प्रकम्पन में परिणत हो जाता है। इस बात को ज़रा समझ लेना चाहिए। पहले वैज्ञानिकों का यह मत था कि प्रकाशवान् पदार्थ में से कई छोटे छोटे कण सब दिशाओं की ओर फेंके जाते हैं और वे असीम वेग से सरल रेखाओं में दौड़ते चले जाते हैं। किन्तु अब विज्ञान का और ही सिद्धान्त है। सब वैज्ञानिक इस बात पर एक मत हैं कि एक अत्यन्त द्रव और सूक्ष्म पदार्थ ईथर नामक है। इसे संस्कृत-वैज्ञानिकों का आकाश कह सकते हैं। आकाश केवल शब्द-गुण काही नहीं है; किन्तु भिन्न भिन्न प्रकम्पनों से भिन्न भिन्न तरङ्ग उसमें आलोक, उष्णता और शब्द उत्पन्न कर सकते हैं।

आलोकदायी पदार्थों में से बन्दूक़ की गोली की तरह कोई चीज़ नहीं छूटती। उस पदार्थ के कण बिलकुल नहीं चलते। किन्तु अपनेही स्थान पर एक प्रकार का प्रकम्पन करते हैं। उस हरकत से आसपास के ईथर में प्रकम्पन की तरङ्गें, जैसे रस्सी के एक छोर को हिलाने से दूसरे छोर तक कम्प होता है, वैसो उठती हैं। वही प्रकम्पन चलता हुआ हमें आलोक की भावना देता है। ऐसेही एक भिन्न प्रकार के प्रकम्पन उष्णता वा शीत का ज्ञान देते हैं। प्रकम्पन एक ही है। किन्तु आंख, कान, वा त्वचा के भेद से तीन भेद हो जाते हैं। इन्हीं प्रकम्पमान किरणों की तेज़ी मन्दीसे रङ्ग का ज्ञान होता है। जो किरणें प्रति सेकण्ड ४५८ अयुतायुत (दश लाख गुना दश लाख) कम्प भोगती हैं वे लाल होती हैं। और जो ७२७ अयुतायुत प्रकम्पन पाती हैं, वे बैंगनी होती हैं। इस प्रकार प्रति सेकण्ड १,९०,००० मील चलनेवाली आलोक की किरणें अपने कम या ज्यादह प्रकम्पन के अनुसार लाल नारङ्गी, पीत, हरित, आसमानी, नीला, बैंगनी, इन सात अकृत्रिम रङ्गों में प्रगट होती हैं।

सूर्य्य के प्रकाश को श्वेत मत समझिए। उस में ये सातो रङ्ग हैं। पदार्थों में भिन्न भिन्न रङ्ग होने का कारण यह है कि जो पदार्थ और रङ्गों की किरणें शोषकर, जिसकी किरणें प्रतिफलित करे, वह

उसी रङ्ग का है। वृक्ष का पत्ता ग्रैार रङ्गों की किरणें शोषकर केवल हरी किरणें प्रतिफलित करता है। ये किरणें आंख में टकरा कर हरा ज्ञान उत्पन्न करती हैं। अब हम फिर पहली बात पर आगये। पदार्थ ने जिस रङ्ग की किरणें ग्रैार रङ्ग की किरणों को शोषकर प्रतिफलित की हैं वे आंख में ताल के पार पहुँचीं। कहना नहीं होगा, किरणें सूक्ष्म प्रकम्पन मात्र हैं। यह प्रकम्पन रेटिना में उलटा चित्र बना देगा। वहां पर इस प्रकम्पन के धक्के से चाक्षुष ज्ञानतन्तु में प्रकम्पन शुरू हो जायगा जो कि मस्तिष्क तक पहुंचकर ज्ञान उत्पन्न करने का सहायक होगा। यह न समझना चाहिए कि उस भीतर बने हुए चित्र को कोई देखता है। वह मस्तिष्क में देखने की शक्ति है। ज्ञानतन्तु-प्रकम्पन के साथ साथ चाक्षुष प्रत्यक्ष की चेतना हो जाती है। बस ज्ञानतन्तु-प्रक्रिया के साथ मानसिक प्रक्रियायें होजाया करतीं हैं। यहां भी पदार्थ के प्रकम्पन के होने से मानसिक ज्ञान "मैं देखता हूँ" हुआ। इस प्रकार वैज्ञानिक नियमों के अनुसार चित्र बनकर उसके प्रकम्पन के साथ साथही ज्ञान होने का नाम ईक्षण, अवलोकन, दर्शन वा रूप-संवेदन है।

ज्ञान-प्रकार।

हमें आंख से स्वभावतः एक रङ्गदार सतह ही का ज्ञान होता है; ग्रैार कुछ नहीं। यह जान पड़ता है कि यह सतह हमारे समीप है वा हम पर प्रभाव डालती है, किन्तु उस सम्बन्ध में अनुभव ग्रैार तर्क करने से हम अपने ज्ञान को बहुत बढ़ा सकते हैं। यह बात "लाक" आदि कई दार्शनिकों ने अनुमान की थी; किन्तु १७०९ ई० में "अवलोकन का नया सिद्धान्त" नामक ग्रन्थ में पहले पहल "बर्कले" ने ही यह सिद्ध किया कि हमें रैखिक अर्थात् रेखा-सम्बन्धिनी दूरी का ज्ञान आंखों से होता ही नहीं। सामने देखती बेर हमें रङ्गदार सतह का ज्ञान होता है सही, किन्तु वह कितनी दूर पर है, सो हम नहीं कह सकते। उक्त दार्शनिक ने अपनी खोज में पहले अवलोकन के विषय में इन प्रश्नों का विचार किया है—आंख से, स्वभाविक रीति पर, हम क्या देखते हैं? किस इन्द्रियके द्वारा हमें पदार्थों के प्रथम गुण ज्ञात होते हैं? त्वक् अर्थात् त्वचा आंख की कहां तक सहायता करती है? बर्कले का सिद्धान्त यह है कि आंख से हमें खाली रङ्ग जान पड़ता है। यह सिद्धान्त उसने पदार्थों के (१) दूरत्व (२) आकृति ग्रैार (३) स्थान की गवेषणा से निकाला है।

[असमाप्त।

पुस्तक परीक्षा।

पञ्चाङ्ग। देहली के ज्योतिषी पण्डित चिम्मन लाल पञ्चाङ्ग बनाने में बहुत कुशल जान पड़ते हैं। हर साल कई तरह के पञ्चाङ्ग उनके यहां से निकलते हैं। उन्होंने संवत् १९६२ के तीन पञ्चाङ्ग हमारे पास भेजे हैं; एक जंत्री भी भेजी है। दो पञ्चाङ्ग देशी मोटे काग़ज़ पर बड़े बड़े अक्षरों में हैं; एक पतले काग़ज़ पर। पञ्चाङ्ग पण्डितों के काम के हैं। सरस्वती के ग्राहकों को, तीन महीने तक, सिर्फ़ आध आने का टिकिट भेजने से ज्योतिषी जी अपने पञ्चाङ्ग इत्यादि बिना मूल्य देने कहते हैं।

❋

चतुरा की चतुराई। यह एक उपन्यास है। इसे स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती ने बनाया है ग्रैार हिन्दीप्रदीप के सम्पादक श्रीपण्डित बालकृष्ण-जी ने शुद्ध किया है। मूल्य इसका ।=) ग्रैार मिलने का पता—शिवराम ग्रैाषधालय प्रेस, प्रयाग, है। इसमें स्वामी जी ने एक वेश्या (!) की कल्पना करके उसे सैाजन्य ग्रैार शिष्टता का आदर्श बनाया है ग्रैार उसके द्वारा उसके प्रेमी को बुरे कामों से बचाया है। जगह जगह पर स्वामी जी ने उपदेश दिये हैं। अन्त में एक लेक्चर के अन्तर्गत धर्म्म, अर्थ, वेद, वेदान्त, समाज ग्रैार

राजनीति आदि सब की बातें कह कर आपने वेद पढ़ने, ब्रह्मचर्य्य रखने, सच बोलने, ईश्वर को मानने, विद्योपार्जन आदि करने के लिए अपील की है। स्वामी जी की प्रायः सभी बातें मानने लायक़ हैं। बड़े हर्ष की बात है कि हमारे सन्यासी महात्मा हिन्दी में पुस्तकें तो लिखने लगे।

❊

सारस्वतसर्वस्व । मिश्र गोविन्दनारायण कुमड़िया रचित । मूल्य १) रुपया । पुस्तककार [६५ क्रास स्ट्रीट, कलकत्ता] से प्राप्य । यह पुस्तक बड़े खोज से लिखी गई है । इसमें सारस्वत सम्प्रदाय के ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की उत्पत्ति, स्थान, गोत्र, प्रवर इत्यादि का सप्रमाण वर्णन है । यह सारस्वतों के सिवा और लोगों के भी देखने लायक़ है । इसके लिखने में लेखक ने बड़ा परिश्रम किया है ।

❊

महिलामहत्व । स्वामी विश्वेश्वरानन्द कृत । २ आने में, शिवराम औषधालय प्रेस, प्रयाग, से प्राप्य । इसमें अहिल्या बाई और तुकाजीराव हुलकर के राजकार्य की बातें है। पुस्तक अच्छी है ।

❊

बालशिक्षादर्पण । दाम एक आना । इसे मास्टर कन्हैयालाल, गोपाल मन्दिर, काशी ने लिखा है। वही इसे बेचते हैं । इसमें नागरी की वर्णमाला, पहाड़े, सवैया, ड्योढ़ा इत्यादि और छोटे छोटे ज़बानी सवालों के क़ायदे हैं ।

❊

रत्नकरण्डश्रावकाचार । जैनग्रन्थरत्नाकर का यह छठा रत्न है । इसमें संस्कृत श्लोकों का अन्वय भी है और उसीके साथ हिन्दी में अर्थ भी दिया हुआ है । पुस्तक जैनियों के काम की है । छपाई, काग़ज़ और जिल्द सब बातें अच्छी हैं । इसमें मंझोले सांचे के ६६ पृष्ठ हैं । धर्म्म, सम्यक् दर्शन, वीतराग आदि का लक्षण और विवेचन, इसमें बहुत अच्छी तरह से किया गया है । मिलने का पता श्रीयुत पन्नालाल जैन, गिरिगांव, बम्बई ।

❊

भारतभगिनी । मिस्टर रोशनलाल, बी० ए०, बारिस्टर, लाहौर, की पत्नी श्रीमती हरदेवी इस का सम्पादन करती हैं। पण्डित हेमराज वैद्य इसके उपसम्पादक हैं । यह मासिक पत्रिका है और १५ वर्ष से निकलती है । इसमें स्त्रियों के पढ़ने लायक़ [illegible] इसे महीने में दो बार निकालने का निश्चय किया गया है । इसलिए प्रतापगढ़ की रानी श्रीमती रघुराज कुँवरी ने १९० रुपये भेजे हैं। और भी कई शिक्षित स्त्रियों ने इसकी सहायता की है। स्त्रीशिक्षा के पक्षपातियों को चाहिए कि इस पत्रिका को लेकर श्रीमती हरदेवी के उत्साह को बढ़ावें । इसके लेखों और छपाई में उन्नति की आवश्यकता है ।





कविवर लछीराम।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] अप्रैल, १९०५ [संख्या ४

विविध विषय।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हमने एस्पराण्टो भाषा के विषय में कुछ लिखा है। इस भाषा का प्रचार दिनों दिन अधिक होता जाता है। इस देश में भी लोग इसे सीखने लगे हैं। इसका प्रचार हो जाने से भिन्न भिन्न देशों के रहने और भिन्न भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले बहुत आसानी से आपस में पत्र-व्यवहार कर सकेंगे। विदेशी व्यापारियों को इससे बहुत फ़ायदा होगा। हिन्दुस्तानियों के सुभीते के लिए सलेम के आदिनारायण चेट्टियार इस भाषा की किताबें भी बेचने लगे हैं। इस भाषा का आज हम एक नमूना देते हैं। महिम्न-स्तोत्र में एक श्लोक है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

अर्थात् जितनी नदियां और जितने नद इत्यादि हैं उनका पानी जैसे, किसी न किसी तरह, समुद्र में पहुँचता है, उसी तरह सांख्य, योग और वेदान्त आदि मार्गों का अवलम्बन करके और भिन्न रुचि के कारण अपने अपने मार्ग को अच्छा समझ करके—चाहे वे मार्ग सीधे हों चाहे टेढ़े—हे ईश! सब मनुष्य अन्त में आप ही तक पहुँचते हैं।

एक सज्जन ने इसका अनुवाद अङ्गरेज़ी में इस तरह किया है—

Every one of the different religions of the world has its own view-point and each religion claims goodness and wisdom for itself. But whatever be the path chosen, whether one selects a direct one or a circuitous one, just as he pleases, You, O God! are the goal as the ocean is the goal of all rivers.

यह मज़मून स्पराण्टो भाषा में इस प्रकार लिखा जायगा—

La diversaj religioj de la mondo, ciu elvenas el malsama vid-punkto, kaj ciu demandas por si bonegecon kaj sanegecon. Sed kio ajn estu la

vojo, rekta au malrekta, kiun oni elektos lau sia plezuro, Vi, ho Dio! estas ilian solan finon, kiel la odeano estas la sola fino de la riveroj.

* * *

इस देश के बड़े बड़े विद्वानों तक के ग्रन्थ धनाभाव के कारण बहुधा वे छपे पड़े रहते हैं। उनको कुछ मिलना तो दूर रहा, उलटा उन्हें गाँठ से देना पड़ता है, तब उनकी पुस्तकें छपती हैं। पर योरप में स्त्रियां तक पुस्तकों की बदौलत लाखों रुपये कमाती हैं। और विज्ञान या दर्शन आदि गहन विषयों की पुस्तकों की बदौलत नहीं; उपन्यासों की बदौलत। मिडिल-मार्च नामक उपन्यास के लिए जार्ज इलियट को १२०,००० रुपये और डेविड ग्रीव्र के लिए हम्फ्री वार्ड को २७०,००० रुपये मिले हैं! ऐसी कई स्त्रियां इङ्गलैण्ड में हैं जिनको पन्द्रह पन्द्रह बीस बीस हज़ार रुपये साल की आमदनी सिर्फ़ उनकी एक एक दो दो पुस्तकों से है!

* * *

कलकत्ते की जिस साहित्य-सभा पर फ़रवरी की सरस्वती में हमने एक नोट प्रकाशित किया है, वह हिन्दी का एक कोश बनाने की चेष्टा कर रही है, व्याकरण बनाने की नहीं। यह भी अच्छी बात है। कोश की भी ज़रूरत है।

* * *

समुद्र की लहरों में सोना भरा है। इस बात का निश्चित पता लग गया है। पश्चिमी देशों के बड़े बड़े ज्ञानी और विज्ञानी पण्डितों ने इस बात को "जांचा और सही पाया" है। इस सोने को बटोरने के लिए कम्पनियां तक खड़ी हो गई हैं। उसकी ईंटें बनकर बाज़ारों में आना सिर्फ़ बाक़ी है। सागर को अब रत्नाकर ही नहीं, सुवर्णाकर भी कहना चाहिए।

* * *

रूस में एक आदमी है। उसका नाम है मचनाऊ। वह दुनिया में सब से लम्बा है। उसकी लम्बाई ९ फुट ८ इञ्च है। कोई साढ़े छ हाथ ऊंचा! मामूली उचाई से दूनो! आज-कल वह लण्डन की सैर कर रहा है। वहां पर एक लघुकाय वामन है। उसका नाम चिकुइटा है। वह सिर्फ़ १ फुट ८ इञ्च ऊंचा है!!! यही वामन देवता दैत्यराट् मचनाऊ की मुलाक़ात सब से कराते हैं! जितना चार आदमी एक दिन में खाते हैं, उतना मचनाऊ एक दिन में स्वाहा कर जाते हैं। आपको जिस स्त्री ने पसन्द किया है वह मामूली नाप-जोख की है।

* * *

"ज़माना" उर्दू की एक मासिक पुस्तक है। वह बरैली से छपकर आती है और कानपुर से प्रकाशित होती है। उसमें अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। बहुत करके मुसलमान, काश्मीरी और कायस्थ ही उसमें अधिक लिखते हैं। उसके सम्पादक एक नव-युवक कायस्थ हैं। आप कानपुर ही में रहते हैं। आप से मिलने का यद्यपि हमें सैाभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, तथापि "ज़माना" से आप की योग्यता का परिचय हमको हो गया है। आपकी इच्छा थी कि हम "ज़माना" में कुछ लिखें। परन्तु कई कारणों से हम आपकी इच्छा को पूरी नहीं कर सके। इसका हमको खेद है। आपने जनवरी के "ज़माना" में एक ख़बर छापी है। वह हिन्दीवालों के जानने लायक़ है। इस लिए हम उसकी नक़ल प्रकाशित करते हैं। ख़बर यह है—"भारतमित्र के नामवर एडिटर मुन्शी बालमुकुन्द साहब गुप्त वेद के ज़माने से लेकर इसलामी अहद तक हिन्दुस्तानी ज़बान की हालत और उसके इनक़लाब के मुतअल्लिक़ एक निहायत ही क़ीमती किताब लिख रहे हैं। इसमें ब्रजभाषा, उर्दू और हिन्दी की सिलसिलहवार तारीख़ होगी और (मुसन्निफ़) उर्दू-हिन्दी की आयन्दा हालत पर भी अपनी राय ज़ाहिर करेंगे। चूंकि उर्दू की एक बे नज़ीर तारीख़ (आबेहयात) मुल्क में मैाजूद है लेहाज़ा किताब का ज़ियादह हिस्सा संस्कृत, हिन्दी और मैाजूदा हिन्दी के ज़िक्र ख़ैर से ममलू होगा। हमको उम्मीद है कि उनकी

तसनीफ़ ग्राम इल्म-दोस्त हज़रात के लिए एक ग़ैर मामूली दिलचस्पी का बायस होगी"। हमारी राय तो यह है कि अगर कोई इस तरह की अच्छी किताब सचमुच ही बनै तो वह ग़ैरमामूली दिलचस्पी का ही बायस न हो बल्कि ग़ैरमामूली फ़ायदे का भी बायस हो। हमारी यह भी राय है कि उस बे नज़ीर तारीख़, ग्राबेहयात, का बोलचाल की हिन्दी भाषा ग्रैार नागरी हुरूफ़ों में अगर तरजुमा हो जाय तो वह ग्रैार भी ज़ियादह ग़ैरमामूली दिलचस्पी ग्रैार फ़ायदे का बायस हो।

***

नये नये मासिक पत्रों को देखकर हमारे सतयुगी हिन्दीप्रदीप को ईर्षा उत्पन्न हुई है। जिसे हम ग्रब तक श्रद्धेय समझते ग्राये हैं, ग्रैार ग्रब भी समझते हैं, उसमें ईर्षा, द्वेष, मद, मत्सर, कुढ़ या चिढ़ की मात्रा चाहै जितनी बढ़ जाय, हमारी भक्ति ग्रैार हमारी श्रद्धा उस पर से ग्रणु-रेणु भर भी कम होने की नहीं। यदि नये पत्रों में चटकीलापन ग्रैार चमक-दमक देख पड़े; ग्रथवा यदि कदाचित् उनके लेखों में कोई छटा या अनुपमता ग्रा जाय तो उसके लिए वे प्रशंसा के पात्र नहीं। प्रशंसा का पात्र प्रदीप ही है। क्योंकि जो कुछ इस नई सृष्टि ने सीखा है वह उसने प्रदीप ही के प्रकाश में सीखा है। हमारी समझ में इन नये पत्रों ग्रैार पत्रिकाग्रों के झकोर से यदि, दैव न करे, प्रदीप बुझ भी जाय तोभी उसको ख़ुश ही होना चाहिये। क्योंकि "शिष्यादिच्छेत्पराभवम्"—यह प्रदीप के ही समकक्ष किसी पुराने पण्डित की ग्राज्ञा है। गुदड़ी में लाल ग्रैार ज़मुर्रद पिरोये रहने की घोषणा सुनकर भी यदि किसी के ग्रसंस्कृत हृदय में उनके पाने की इच्छा न उत्पन्न हो, ग्रथवा यदि वे उसे ढूंढ़े ही न मिलें, तो उसीका दुर्भाग्य समझना चाहिए। प्रदीप की शिखा यदि कुछ ऊंची हो जाय तो, ग्रधिक प्रकाश फैल जाने से, शायद ग्राज कलके मन्दाक्ष मनुष्य उनको ढूंढ़ लें।

श्रीगुरु तेगबहादुरजी।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

भर्तृहरि।

संसार में आकर हर एक आदमी को दूसरे की सहायता की ज़रूरत रहती है, क्योंकि ईश्वर ने लैाकिक जगत में एक से एक का ऐसा सम्बन्ध कर दिया है कि बिना दूसरे की सहायता के किसी कार्य का होना कठिन नहीं वरन् ग्रसम्भव है। इन सब सहायकों ग्रथवा मित्रों में सबसे ग्रधिक ज़रूरी कैान है? हमारी समझ में तो इनमें सबसे ग्रधिक ज़रूरी चीज़ वही है जो हमें इस जन्म में भी सुख देती है ग्रैार मरने पर, जब हमारे सब मित्र ग्रैार सहायक हमें छोड़ देते हैं, तब हमारे साथ जाती है। वह कैान चीज़ है? "धर्म्म"। ग्रहा, इस स्वर्गीय शब्द में कैसा जादू का सा ग्रसर है। क्यों न हो, जब ऐसे सच्चे मित्र का नाम सुनकर हमें ग्रानन्द न होगा तब कब होगा। पर हम ग्रापसे पूछते हैं कि क्या इस विश्वासी मित्र के साथ हम भी वैसा ही बर्ताव करते हैं? जैसे यह मरने पर हमारे साथ जाता है वैसे ही क्या मृत्यु को तुच्छ समझकर हम भी इस की वैसी ही रक्षा करते हैं? "धर्म्म एव हतो हन्ति, धर्म्मो रक्षति रक्षितः"—क्या महात्माग्रों का यह वाक्य हमारे हृदय पर ग्रङ्कित है? क्या धर्म्माभिमानी भारतवर्ष में ग्रपने सच्चे मित्र के नाम पर प्राण-बलिदान देनेवाले लोग वर्तमान हैं? हा शोक! प्राणों का बलिदान देना तो दूर रहा, हम कृतघ्नों से तुच्छ स्वार्थ का बलिदान भी तो नहीं दिया जाता। हा! धर्म्मरूपी मित्र, तू भी हमारे पुरखाग्रों की करनी याद करके ग्रांसू बहाता है। पर नहीं, हमारे कृतघ्न हृदय मरु-भूमि नामक बालू के

मैदान हो गये हैं। वह तेरे अविश्रान्त आँसुओं की झड़ी से भी कुछ नहीं पसीजते। अच्छा कोई न कोई दिन तो ऐसा आवेहीगा जब हम तेरी मित्रता का बदला दे सकेंगे। इसलिए इस समय तेरे सच्चे भक्त, तुझपर प्राण बलिदान देनेवाले, महात्मा गुरु तेग़बहादुरजी की जीवनी की चर्चा कर हम अपनी कृतघ्नता पर थोड़ा मुलम्मा चढ़ाते हैं और उस समय का आसरा देख रहे हैं कि जब यह लोहे पर का मुलम्मा पारस के संसर्ग से सच्चा सोना होगा।

हमारे चरित्रनायक, धर्म्म के सच्चे मित्र, गुरु तेग़बहादुर शूरवीर गुरु हरगोविन्दजी के सबसे छोटे पुत्र थे। संवत् १६७८ की आश्विन बदी ३, रविवार, को अमृतसर में इनका जन्म हुआ था। लड़कपन में बालकों का स्वभाव जैसा चपल होता है इनका वैसा न था। यह बचपन ही से बड़े गम्भीर और बुद्धिमान थे। जब इनकी अवस्था ९ वर्ष की हुई तब हरगोविन्दजी ने संवत् १६८६, कुआँर १५, में कर्तारपुर निवासी एक खत्री की कन्या गुजरीजी से इनका विवाह कर दिया। हमारे चरित्रनायक का पिता पर बड़ा प्रेम था। वह कभी भी हरगोविन्द जी का साथ नहीं छोड़ते थे। यहां तक कि युद्ध में भी अपने पिता ही के साथ रहते थे। जब गुरु हरिरायजी को गद्दी देकर हरगोविन्दजी मरने लगे तब तेग़बहादुर की माता ने पति से रोकर कहा कि "महाराज, आप तो चले, तेग़ा का क्या प्रबन्ध किया?" इस पर हरगोविन्दजी ने अपने हाथ का एक रूमाल, मोती की एक माला और एक तलवार देकर तेग़बहादुर की माता से कहा, "तुम धीरज रक्खो, तेग़ा धर्म का सच्चा मित्र और धर्म के नाम पर जान क़ुरबान करनेवाला गुरु होगा। मेरी इन चीज़ों को अपने पास रक्खो। जब तेग़ा के भाग्योदय होने का समय आवे तब उसे यह मेरी निशानियां दे देना"—इत्यादि। अस्तु, गुरु हरगोविन्दजी के स्वर्ग सिधारने के पीछे तेग़बहादुर की माता उन्हें साथ लेकर बकाला ग्राम में जा रहीं और माता और पुत्र चुपचाप अपना समय बिताने लगे।

इधर जब गुरु हरिकृष्णजी के मरने का समाचार बकाला ग्राम में पहुंचा तब गुरु की गद्दी के प्रधान प्रधान शिष्य आपही गुरु बन बैठे और भोले भाले सिक्खों से पुजवाने लगे। तेग़बहादुर भी इन लोगें की यह काररवाई देख रहे थे, पर उन्होंने चुपचाप बैठे रहना ही उचित समझा। चूंकि हरिरायजी का बड़ा लड़का रामराय भी हरिकृष्णजी की मृत्यु के थोड़े ही दिन पीछे निस्सन्तान मर गया था, इसलिए गद्दी के वाजबी हक़दार तेग़बहादुर ही थे। पर उन्होंने यह समझकर कि, जब समय आवेगा तब मुझे आपही गद्दी मिल जायगी, नवीन गुरु-मण्डलियों से कुछ भी छेड़ छाड़ नहीं की।

इन्हीं दिनों टण्डानिवासी एक सिक्ख का जहाज़, जो माल से लदा हुआ था, हिन्द के सागर में भँवर के चक्कर में आ गया। उसने उसी समय यह मानता मानी कि यदि इस भँवर से मेरा जहाज़ बच जायगा तो मैं ५०० अशरफ़ी गुरु साहब की भेंट करूंगा। अस्तु जब उसका जहाज़ भँवर से बचकर यथोचित स्थान पर निर्विघ्न पहुंच गया तब ५०० अशरफ़ी लेकर वह गुरु की भेंट को चला। बकाला ग्राम में आकर घर घर गुरु देख वह बड़ा चकित हुआ और इस सोच में पड़ गया कि इनमें से सच्चा गुरु कैान है जिसे मैं भेंट दूं। अन्त को उसने निश्चय किया कि सबसे मिलकर सबों को एक एक अशरफी भेंट दूं, जो सच्चा गुरु होगा वह आपही मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार भेंट मांग लेगा। अतएव उसने इन सब नक़ली गुरुओं के दर्शन कर करके उन्हें एक एक अशरफी भेंट दी। कोई कुछ भी न बोला। अन्त को जब सब गुरुओं से वह मिल चुका तब उसने पूछा कि "यहां और भी कोई गुरु की गद्दी का हक़दार है?" इस पर उसे मालूम हुआ कि गुरु हरगोविन्दजी के लड़के तेग़बहादुरजी भी यहीं रहते हैं। पर उनके यहां गद्दी नहीं है। इस सिक्ख ने तुरन्त हमारे चरित्रनायक से भेंट की और जब एक अशरफ़ी निकालकर उन्हें वह भेंट देने लगा तब

तेग़ाजी बोले कि "भाई तुमने पाँच सौ अशरफ़ी की मानता मानी थी, एक अशरफ़ी क्यों देते हो।" इतना सुनते ही वह सिक्ख गद्गद् हो तेग़ाजी के चरणों पर गिर पड़ा और बोला कि "महाराज, आप प्रगट होकर इन लालची गुरुओं की ठगविद्या से सिक्खों को क्यों नहीं बचाते?" इस पर जब तेग़ाजी ने अनिच्छा प्रकट की और कहा कि "मैं यहीं मज़े में हूं" तब वह सिक्ख तुरन्त उनके मकान के कोठे पर चढ़ गया और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगा—"गुरु लब्या, गुरु लब्या"—अर्थात् गुरु मिल गये। उसकी चिल्लाहट सुनकर बहुत से सिक्ख इकट्ठे हो गये और उसने सबों से सच्चे गुरु के प्रकट होने का समाचार कह सुनाया। और जब इसी समय तेग़ाजी की माता ने भी हरगोविन्दजी की निशानी, अर्थात् रूमाल, तलवार और मोती की माला पेश की, तब तो तेग़ाजी के सच्चे गुरु होने का किसी को सन्देह न रहा और संवत् १७२१ के वैशाख मास में तेग़ाजी को सबों ने गद्दी पर बिठलाकर अपना एकमात्र सच्चा गुरु माना। तब से हमारे चरित्र-नायक गुरु तेग़बहादुर कहलाये जाने लगे।

जब यह सम्वाद देशान्तरों में फैला तब तो हर एक सङ्गतों से हज़ारों सिक्ख इनके दर्शनों को आने लगे और बहुत दिनों के बाद अपने सच्चे गुरु का दर्शन कर सबों ने अपने को धन्य माना। जब नवीन गुरुमण्डली के मुखिया धीरमल वग़ैरह ने गुरु तेग़बहादुर का प्रताप चमकता देखा, तब वे लोग ईर्षा से जलने लगे और जब कुछ न बन पड़ा तब उन्होंने रात के समय गुरु साहब के मकान पर चढ़ाई कर, सब माल असबाब लूट लिया और जब तेग़ाजी उन्हें मना करने लगे तब धीरमल ने उन पर बन्दूक़ दाग़ दी। पर भाग्यवश हमारे चरित्रनायक बच गये। जब सबेरा हुआ और सिक्खों ने गुरु की इस दुर्दशा का हाल सुना तब वे सब बड़े ही क्रोधित हुए और तेग़ाजी के मना करते रहने पर भी तलवार बन्दूक़ लिए बरजोरी धीरमल वग़ैरह के मकानों में घुस गये और उनका सब माल असबाब धन दौलत छीन कर उनके मकानों में आग लगा दी। यदि धीरमल भागकर कर्तारपुर न चला गया होता तो उसकी एक बोटी भी साबित न बच पाती। इसके पीछे गुरु तेग़बहादुर भ्रमण करते हुए अमृतसर पहुंचे। जब वहां के "दर्बार साहब" के पुजेरियों ने सुना कि गुरु तेग़-बहादुर आये हैं तब इस भय से कि कहीं यह दर्बार साहब दख़ल न कर बैठें, उन्होंने वहां का फाटक बन्द कर दिया और उन्हें मन्दिर में जाने से रोक दिया। इस पर हमारे शान्तचित्त चरित्रनायक कुछ न बोले और अमृतसर नामक तालाब में स्नान कर निकट ही एक वृक्ष के नीचे जा बैठे और वहां के पुजेरियों को शाप दिया कि "जाओ, तुम लोगों में आपस में सदा बैर बना रहेगा और तुम कौड़ी कौड़ी के लिए झगड़ते रहोगे"। अस्तु, आज तक उनका यही हाल है। केवल वहीं क्यों, हिन्दुओं के सब तीर्थस्थानों में पण्डों का यही हाल है। भङ्ग छानने, दम मारने और भोले भाले यात्रियों को ठगकर पैसा कमाकर कौड़ी कौड़ी के लिए फ़ौज-दारी करने ही में इनका समय व्यतीत होता है। तीर्थ के पण्डे मानों वहां के प्लेग हैं। वहां यात्रियों के जाने की देरी है, कि बस, फिर वे उनसे ऐसे चिपट जाते हैं कि बिना यथोचित भेंट लिए पिण्ड नहीं छोड़ते।

इसके बाद घर लौटते समय जब तेग़बहादुर बल्ले ग्राम में पहुंचे तब वहां बहुत सी औरतें इनके दर्शनों को आईं और इन्हें विविध प्रकार के धन रत्नादिक भेंट देकर उन्होंने आशीर्वाद ग्रहण किया। गुरु तेग़बहादुरजी की यादगार के लिए इस ग्राम में प्रति वर्ष माघ सुदी १५ को एक मेला लगता है, जहां बहुत सी औरतें सङ्गत के दर्शनों को आती हैं। इसके पीछे संवत् १७२२ के जेठ महीने में गुरु साहब कीर्तिपुर पहुंचे। वहां सिक्खों ने इनका बड़ा सत्कार किया और हज़ारों रुपये नक़द तथा बहुत से मूल्यवान रत्न इत्यादि इन्हें भेंट दिये, जिससे हमारे चरित्रनायक का ख़ज़ाना भर

गया और लङ्गर सदा गरम रहने लगा। फिर संवत् १७२२ के आषाढ़ मास में इन्होंने सतलज के किनारे मकबाल ग्राम की ज़मीन ख़रीद ली और उस जगह का नाम आनन्दपुर रखकर वहां बहुत से सिक्खों के बसा दिया। इसी समय के लगभग धीरमल ने औरङ्गज़ेब के पास गुरुआई की गद्दी का दावा किया। पर वहां कुछ सुनाई न हुई।

संवत् १७२२, माघ सुदी १५, के गुरु साहब अपने सब साज सामान और शिष्यों के साथ तीर्थ करने निकले और मथुरा, आगरा, प्रयाग, विन्ध्याचल इत्यादि होते हुए काशी पहुंचे और लक्खी चबूतरे पर, जहां उनकी यादगार में एक मकान बना हुआ है, जा ठहरे। वहां कुछ दिन रहकर वे गया गये। वहां जयपुर के राजा जयसिंह से इनकी भेंट हुई। यह शाहंशाह औरङ्गज़ेब की आज्ञा से सेना लेकर आसाम के विजय करने जा रहे थे। चूंकि आसाम के लोग बड़े जादूगर होते थे और जयसिंह पहले एक बार उनसे हार चुके थे, इसलिए तेग़बहादुरजी के करामाती जानकर इन्हें उन्होंने अपने साथ ले जाना चाहा। हमारे चरित्रनायक ने पहले ते उनके साथ जाना मंज़ूर नहीं किया, पर जब वे बहुत ज़िद करने लगे तब वे उनके साथ हो लिए और अपनी स्त्री वग़ैरह के पटने में एक विश्वासी शिष्य के यहां छोड़ दिया। फिर राजा के साथ मुंगेर, मुर्शिदाबाद होते हुए वे ढाके में पहुंचे। वहां बहुत से लोगों ने इनके दर्शन कर इन्हें धन रत्नादि भेंट दिये। यहां पर जिस मकान में गुरु साहब टिके थे, वहां अब तक उनका एक पलङ्ग सिक्खों द्वारा पूजा जाता है। इसके बाद आसाम पहुंचने पर वहां जयसिंह और आसाम के राजा से घनघोर युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में गुरु तेग़बहादुर के सिक्ख लोग भी अपने गुरु के साथ राजा जयसिंह की ओर से लड़े थे। अन्त को शूर वीर राजा जयसिंह के उत्साह और सिक्ख जवानों की बहादुरी से आसाम का राजा हार गया और गुरु तेग़बहादुर के पैरों पर गिर कर उसने क्षमा मांगी और औरङ्गज़ेब की आधीनता क़बूल की। इस युद्ध में राजा जयसिंह के हाथ जो लूट का माल असबाब लगा था उसमें से उसने सात लाख की अशरफ़ियां और जवाहिरात तेग़बहादुरजी के भेंट दिये। इसी बीच में गुरु तेग़बहादुर के घर पुत्र होने का सम्वाद आया, जिसे सुन कर वे बड़े ख़ुश हुए और आसाम के राजा के क़िले ही में ख़ूब जलसे और नाच रङ्ग हुए। आसाम का राजा भी हमारे चरित्रनायक के गुणों से मुग्ध हो उनका शिष्य हो गया और गुरु साहब की आज्ञा से एक ऊंचे टीहे पर "दमादमा साहब" नाम की एक सङ्गत बनवा दी जो अब तक मौजूद है। इसके अलावा उन्हें अपने यहां ठहराकर उसने उनका बहुत कुछ सत्कार किया और चूंकि वह निस्सन्तान था इसलिए एक दिन चौपड़ खेलती समय प्रसन्न होकर तेग़बहादुरजी ने उसे पुत्र होने का वरदान दिया और फिर वहां कुछ दिन रहकर जगन्नाथजी होते हुए वे पटने लौट आये। आसाम के इस राजा का नाम रामराय था जिसने थोड़े ही दिन पीछे एक बड़े सुन्दर पुत्र का मुंह देखा। इस मौक़े पर हज़ारों रुपये की अशरफ़ियां और जवाहिरात इसने गुरु तेग़बहादुरजी को भेंट में भेजे। महीना भर पटने में रहकर गुरु तेग़बहादुर जी वहां से काशी, हरिद्वार होते हुए चैत्र बदी द्वादशी, संवत् १७२४, के कीर्तपुर अपने घर लौट आये। बहुत दिनों के बाद गुरु का दर्शन पाकर सिक्ख लोग बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें बहुत कुछ सामान भेंट में दिया। इसी समय गुरु साहब ने अपने एकमात्र पुत्र गोविन्द के पटने से बुलाकर उसे हिन्दी, फ़ारसी और गुरुमुखी पढ़ाना शुरू किया और साथ ही कसरत, कुश्ती, घोड़े पर सवार होना, तलवार चलाना, और तीरन्दाज़ी की विद्या भी इन्हें सिखाई जाने लगी। यह भी ऐसा चित्त लगाकर इन विद्याओं को सीखते थे कि थोड़े ही दिनों में यह हर फ़न में निपुण हो गये।

इसी समय के लगभग दुराचारी औरङ्गज़ेब, जो ज़बरदस्ती हिन्दुओं को मुसल्मान बनाता था, और भी अत्याचारी हो गया और उसके इस अत्याचार से प्रजा त्राहि त्राहि करने लगी। अन्त को जब इसने सिक्खों पर भी ज़ोर, ज़ुल्म करना आरम्भ किया और उन्हें ज़बरदस्ती मुसल्मान बनाना चाहा, तब बहुत से सिक्ख गुरु तेग़बहादुर की शरण में जा पुकारने लगे, जिनके साथ औरङ्गज़ेब की हज़ारों हिन्दू प्रजा भी थी। जब हमारे धर्मात्मा चरित्र-नायक ने शरणागतों की यह आपत्ति देखी तब उन्होंने सब को इकट्ठा करके कहा कि "तुम लोग औरङ्गज़ेब से जाकर कहो कि पहले हमारे गुरु तेग़बहादुर को मुसल्मान बनाइये, तब हम लोग भी बिना उज्र मुसल्मान हो जायँगे"। जब सब लोगों ने औरङ्गज़ेब से जाकर ये बातें कहीं तब उसने फ़ौरन हमारे चरित्रनायक को बुलवा भेजा। हमारे धर्म के सच्चे मित्र तेग़बहादुरजी, जो इस मौके का रास्ता ही देख रहे थे, फ़ौरन दिल्ली जाने के लिए तैयार हो गये और चूँकि उन्होंने धर्म के नाम पर प्राण बलिदान देने का सङ्कल्प कर लिया था, इसलिए अपने पुत्र गोविन्दसिंह को सब बातें समझा बुझा कर, संवत् १७२४, आषाढ़ बदी १३, को दिल्ली की ओर रवाने हो गये और राह में कई रोज़ बिताकर आगरे पहुँचे। जब औरङ्गज़ेब ने इनके आने में देरी होती देखी तब भुँझलाकर फ़ौरन इनकी गिरफ़्तारी का इश्तिहार दे दिया। गुरु तेग़बहादुरजी आगरे ही में थे, इसी बीच में बादशाही सवारों ने इन्हें मय पाँच शिष्यों के पहरे में कर लिया और दिल्ली लाकर कोतवाली में, जहां गुरु साहब के नाम पर अब तक एक गुरुद्वारा बना हुआ है, इन्हें नज़रबन्द रक्खा। दूसरे दिन बादशाह औरङ्गज़ेब ने इन्हें सामने बुलाकर कहा कि—"तुम सिक्खों के गुरु कहलाते हो, तो क्या करामात रखते हो? या तो अपनी कोई करामात दिखलाओ या 'पाक दीन इसलाम' क़बूल करो"। इस पर हमारे धर्मवीर ने उत्तर दिया कि "हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही ख़ोदा के बनाये हैं, दोनों ही को वह कर्मानुसार समान फल देता है। यदि उसे मुसल्मानी मज़हब ही प्यारा होता, तो हिन्दू धर्म को वह पैदा क्यों करता? मुसल्मानी धर्म में हमारे ऋषियों के धर्म से कुछ उत्तमता नहीं है। फिर हम क्योंकर अपने सनातन धर्म को छोड़कर तुम्हारा नया मज़हब क़बूल कर सकते हैं? सुनो, ईश्वर ने तुम्हें हिन्दू और मुसल्मान दोनों का बादशाह बनाया है। एक दिन तुम्हें भी अपने दुष्ट कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। तुम्हें अपने धर्म्म का ऐसा पक्षपात कर बेचारे निर्बल हिन्दुओं को सताना उचित नहीं है। क्या तुम्हारी बादशाहत सदा क़ायम रहेगी? संसार में कोई चीज़ भी एक सी क़ायम नहीं रहती। एक दिन ऐसा आवेगा कि इन्हीं हिन्दुओं के आगे तुम्हारी सन्तानों को सर झुकाना पड़ेगा। अभी से चेत जाओ। नहीं तो याद रक्खो कि तुम्हारे इस अत्याचार का बदला हिन्दू लोग बड़े भयङ्कर रूप से लेंगे। इसके अलावा जो तुम करामात दिखाने की बात कहते हो, सो हमसे नहीं हो सकती। हमें जादूगरों की ठगविद्या नहीं आती। परमात्मा के स्वाभाविक नियमों में कोई दख़ल नहीं दे सकता"। हमारे धर्म्मवीर की ये बातें सुनकर दुष्ट औरङ्गज़ेब झल्ला उठा और आज्ञा दी कि इन्हें क़ैद कर सख़्त तकलीफ़ पहुँचाओ और जब तक यह मुसल्मान होना क़बूल न करें इन्हें प्राणान्त कष्ट दो।

अस्तु, निर्दयी मुसल्मानों ने गुरु साहब को क़ैद कर हर तरह से क्लेश पहुँचाना आरम्भ किया। यहां तक कि उनके पाँचों शिष्यों को भी बड़ी निर्दयता से मारना शुरू किया। उनमें से एक को गुरु साहब के सामने ही आरे से चिरवा डाला। दूसरे को खौलते हुए पानी की देग में डालकर मार डाला। और बाक़ी के तीनों को भी सूली दे दी। और तेग़बहादुर से कहा कि अब भी समझ जाओ, नहीं तो तुम्हारी भी यही दुर्दशा होगी। हमारे धर्म्मात्मा चरित्रनायक ने इन दुष्टों की बात का कुछ जवाब न दिया और आँख मूँद

कर परमात्मा का भजन करने लगे। तब गुरु तेग़बहादुरजी को क़ैदख़ाने से निकालकर लोग बादशाह के सामने ले चले। जब बादशाह ने उन्हें देखा तब वह बोला कि "क्यों जनाब, अब भी आप राह पर आये या नहीं? अब भी मान जाओ, नहीं तो क़तल किये जाओगे।" औरङ्गज़ेब की यह बात सुनकर हमारे धर्मवीर ने शान्तभाव से उत्तर दिया कि "मैं दूसरी राह पर क्यों आने लगा। जिस राह पर एक बार पैर रख चुका वही मञ्ज़िल पर पहुंचायेगी। तू क़त्ल करने को बार बार मुझे क्या धमकी देता है। असली तेग़बहादुर को आग नहीं जला सकती, तलवार नहीं काट सकती। इस नाशवान शरीर को अगर तैंने टुकड़े टुकड़े भी कर डाला तो उससे मेरी क्या हानि होगी। आत्मा अमर है। उसे लौकिक शक्ति कष्ट नहीं पहुंचा सकती"। हमारे दृढ़प्रतिज्ञ धर्म्मवीर की बातों ने दुष्ट औरङ्गज़ेब के क्रोध में घी का काम किया। उसने हुक्म दिया कि गुरु का सिर फ़ौरन धड़ से अलग कर दिया जाय। अस्तु, सिपाही लोग इन्हें क़त्ल करने के स्थान पर ले गये और हमारे चरित्र-नायक ने अगहन सुदी ५, संवत् १७३२, को स्नान करके अपनी पोशाक पहिनी और वहीं एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर ग्रन्थसाहब का पाठ करने लगे। और ज्योंहीं उन्होंने परमात्मा के ध्यान में सीस झुकाया त्योंहीं जल्लाद की तलवार ने उसे एक झटके में धड़ से अलग कर दिया और सच्चे धर्म्मवीर गुरु तेग़बहादुर की पवित्र आत्मा परलोक को प्रस्थान कर गई।

जब गुरु साहब के धर्म्म के नाम पर यों बलिदान होने की चर्चा फैली तब दिल्ली भर में बड़ा हल्ला मचा और हमारे चरित्रनायक की लाश को घेरकर लाखों हिन्दू खड़े हो गये और औरङ्गज़ेब को गालियां देने लगे। इसी बीच में एक झाड़ू देनेवाला वहां आया और सब लोगों की आँख बचाकर गुरु तेग़बहादुर का सर ले भागा और पञ्जाब में उनके पुत्र गोविन्द को दे आया। गोविन्दसिंह इस झाड़ूबरदार की कारस्वाई से बड़े ख़ुश हुए और उसे अपना शिष्य बनाकर जीवां से जवानसिंह बना दिया। औरङ्गज़ेब ने गुरु साहब का धड़ चौक में चील कौवों के खिलाने को रखवा दिया। पर ठीक सन्ध्या के समय एक सिक्ख इनका धड़ उठाकर अपने घर ले आया, और बादशाह के डर से इनकी लाश समेत अपने मकान में आग लगाकर गोविन्दसिंह के पास भाग गया। इसी जगह पर गुरु तेग़बहादुरजी के नाम से रिकाबगञ्ज नाम का एक मकान बना हुआ अब तक मौजूद है। और जिस स्थान पर हमारे धर्म्मवीर ने शान्तिभाव से बैठकर अपना सिर कटवाया था, वह सीसगञ्ज कहलाता है। क़ैदख़ाने में रहती समय इन्होंने बहुत से जोशीले और वैराग्य-पूर्ण भजन बनाये थे जो ग्रन्थसाहब के कोरे पृष्ठों पर लिख दिये गये।

वेणीप्रसाद।

वसन्तराज।

[१]

सुयश-गान करो भगवन्त का;
सुखद है अब राज्य वसन्त का।
कठिन शीत पड़ा दिन रात जो;
अब नहीं खलता जलजात को॥

[२]

हिम-निपात हुआ अब दूर है;
सुख चराचर को भरपूर है।
त्रिविध शीतल-मन्द-सुगन्धित;
बह रही अब मारुत है नित॥

[३]

शिशिर में तरु जो बिन पर्ण थे;
हरित वर्ण हुए सज वे सभी।
सुमन-सज्जित आज समाज है;
सब कहीं सुखमामय साज है॥

कन्यामहाविद्यालय, जालन्धर, के अध्यापक और अध्यापिकाएं।

१. **पण्डित बिश्वनाथ वैद्य,** आरोग्यशिक्षा के अध्यापक।

२. **पण्डित देवोदयाल,** विद्यालय के मुख्य पण्डित।

३. **लाला भोलानाथ,** अङ्क-गणित, पदार्थ-विद्या, आदि के अवैतनिक अध्यापक।



४. **माता राम देवी,** ज़रदोज़ी, सीना और पिरोना की अध्यापिका।

५. **कुमारी सत्यवती,** गणित की अध्यापिका।

६. **कुमारी आमोदिनी घोष,** अङ्गरेज़ी और सङ्गीत की अध्यापिका।

७. **श्रीमती सावित्री देवी,** इतिहास और धार्म्मिकशिक्षा की अध्यापिका।

८. **श्रीमती रानी देवी,** छोटे बच्चों की अध्यापिका।

९. **श्रीमती बुद्धिमती देवी,** "ड्रिल" की अध्यापिका।

१०. **श्रीमती दुर्गावती देवी,** अवैतनिक अध्यापिका।

११. **श्रीमती सोहावा देवी,** अवैतनिक अध्यापिका

[४]

वन-विहार-निमित्त वसन्त के ;
उचित स्वागत की अभिलाष से ।
निज तपोवल से तरु-वल्कली *
सुरपुरी सम की सुवनस्थली ।

[५]

रजनि में नभ ज्यों अभिराम है;
कुसुम-संयुत त्यों महिधाम है ।
प्रणय में रवि के हिम-कामिनी ;
अब लगी द्रवने दिन-यामिनी ॥

[६]

सरस † हो नदियाँ भरने लगीं ;
ग्रहण यौवन का करने लगीं ।
अब न वे दुख से, दुबली लगैं ;
नव-वधू-तन-तुल्य भली लगैं ॥

[७]

नित परस्पर-प्रेम-सुधा-सनी ;
नव युवा जन रीति रचैं घनी ।
मदन-पूजन ‡ से नित नित्य वे ;
सब हुए मन में कृतकृत्य वे ॥

[८]

तरुण, बालक, वृद्ध प्रमोद में,
रजनि-वासर मग्न विनोद में ।
रुचिर फाग मची सब ओर है ;
न सुख का जग में अब छोर है ॥

[९]

मधुप हैं कुसुमों पर गूँजते ;
विहग हैं विटपों पर कूजते ।
हृदय में अपने अति तुष्ट हो ;
सब कथा कहते ऋतु राज की ॥

[१०]

तनिक भी दुख का मिलता नहीं
अब पता, पुर-कानन में, कहीं ।
अति-समीप सभी सुख-साज है ;
सकल-सौख्य-धनी ऋतुराज है ॥

[११]

नृपति पुण्य-चरित्र जहाँ रहै ;
सुख-समृद्धि-समीर वहाँ बहै ।
यदपि हो सब उन्नति आप से ;
समझिए नृप-पुण्य-प्रताप से ॥

[१२]

विजय हो जिसको सब चाहते ;
चरित हो जिसका सुसराहते ।
अवनि में चिर राज्य करै वही ;
विनय, हे परमेश्वर ! है यही ॥

सनातन शर्म्मा सकलानी ।

रसालपञ्चक ।

[१]

जो कोउ दूर सों आवैं थके,
तिन के दुख दूर करैं ततकाल ।
दै निज शीतल छाँह मनोहर,
हेतु बिना सुख देत कमाल ॥
कौन तिहारी कहै महिमा जन-
मोदन जो लखि होत निहाल ।
पाहनहू सों हनै तेहि को तुम,
देत अमी फल धन्य रसाल ॥

[२]

यद्यपि तोसों रहै अति दूर पै,
राखै हरो, करि छाँह ललाम ।
त्यौं जनमोदन एहो रसाल !
विलोकि दवागिन ग्रीषम घाम ॥

---

* (क) वस्त्राभरण रहित वल्कल-धारी ऋषिगण ;
(ख) पत्र-पुष्प-रहित वल्कलशाली तरुवर ।

† बर्फ़ गलने के कारण सजल होकर ।

‡ वसन्तऋतु में भगवान मदन को पुष्प-चन्दनादि से पूजने की प्रथा सनातन से है । 'वसन्तोत्सव' तथा 'मदन-महोत्सव' साथ ही साथ होते हैं ।—रत्नावली ।

आँसुन धार बहावत है चहुँधा
तुम्र ताप निवारन काम।
एक अकारण मित्र तिहारो,
अहैं जगमें रस मै घनश्याम ॥

[३]

फटकारि कै दूर भगावत है,
खल काक उलूकन को सबकाल।
फल उन्नति हेतु उपाय घने,
रचि प्रान समान करै प्रतिपाल ॥
जनसीदन जो कछु पाक्यौ गिरै,
फल पाय तिन्हें अति होत निहाल।
धनि है एहि बाग़ को माली, अहो
जिन सेवै सुजीवन सींचि रसाल ॥

[४]

सेवत हैं तुम कों तब लैं जब लैं,
फल पूरो लहैं रस खानि सों।
देखतही फलहीन तुम्हे तजि दैहैं,
अहो! निज निस्पृह बानि सों ॥
मानि हैं ना उपकार, इन्हें जन-
सीदन सोच न है तुम्र हानि सों।
एहो रसाल न भूलो कभू इन,
कोयल की मधुरी बतियानि सों ॥

[५]

आतप सीत सहै वरपाकृत,
पावत हू नित कष्ट अनेक।
औरन को उपकार करैा हो,
अहो सहकार! हरै नहिँ टेक ॥
है सब तें में भलो गुन पै,
जनसीदन एक यहै अविवेक।
काक उलूकन को निज पास,
बसाय करैा फल नष्ट कितेक ॥ ५ ॥

जनार्दन झा।

वसन्त।

जय वसन्त रसवन्त सकल-सुख-सदन सुहावन
मुनि-मन मोहन भुवन तीन जिय-प्रेम गुहावन
जय सुन्दर स्वच्छन्द भावमय हिय प्रति परसन
जयनन्दन वन सुरभित सुखद समीरन सरसन
जय मधुमाते मधुप-भीर कों चहुं दिसि छोरन
ललित लतान वितानन में दुति-दलहिं बिथोरन
जय अनूप आनन्द अमित अति अटल प्रदरसन
जय रस-रङ्ग-तरङ्ग वेलि अलबेलिन बरसन
करिवे स्वागत आप हरन-त्रयताप सकल थल
जड़ जङ्गम जग-जीव जनैा जाग्यौ जोवन-जल

जो तरु विथित-वियोग सदां दरसन तव चाहत
नैाचि नौचि कच-पातनि अश्रु-प्रवाह प्रवाहत
देखहु किशलय नहीं आंखि अति अरुण भयीं तिन
रोवत रोवत हाय! थके अब टेर सुनौ किन?
तुम्हरी दिसिहि निहारि पुलकि तन पात हिलावत
करसों मानहुँ मिलन तुमहिँ निज ओर बुलावत
बैारे नहीं रसाल बने बैारे तव कारन
बलिहारी तव नेह-नियम-निठुराई धारन!
तुमसैा कठिन कठोर और जग दूसर दीख न
साँचौ किय निज नाम "पञ्चशर को शर तीखन"!

तैाहू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत
करनौ वाकी ओर जाहिसों प्रेम लगावत
लखि तुम्हरे पद-कञ्ज रञ्ज सब भूलि भूलि तन
साजि साजि सँग ललित लहलही लैानी लतिकन
भांति भांति के विटप-पटनि सजि वे ही आवत
कोऊ फल कोउ फूल मुदित मन भेटहिँ लावत
"जयति" परसपर कहत पसारत आपनि डारन
मनहु मत्त मन मिलन मित्रकर कर गर डालन
आवहु आवहु वेगि अहो ऋतुगन के नरपति
तरुवृन्दनि को लखहु आप शोभा की सम्पति

वह देखैा नव कली भली निज मुखहि निकारति
लगि लगि वात-प्रभात गात अलसात सम्हारति

प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति
लहकि लहकि जनु स्वाद लैन को भाव बतावति
मुखहि मोरि जमुहाति भरी तन अतन-उमङ्गन
जोम-जुवानी जगे चहत रस-रङ्ग-तरङ्गन
वह देखौ अलि-पुञ्ज कली-कल-कुञ्ज गुँजारत
मानहु मोहन मनहि मदन को मन्त्र उचारत
ठौर ठौर मधु-अन्ध भयो वह देखौ झूमत
कबहूँ जापर वापर यों सबही पर घूमत

फूलत कच-कचनार अपार अनार हजारन
किंशुक जाल तमाल विसाल रसाल-पसारन
वह देखौ कुल-वकुल घिरयो जो आकुल मधुपन
बोरत चहुंधा चित्त निचोरत चारु मधुरपन
कहूँ पटल के पुहुप चटकि चटकत चित चायन
बोरे आँनद मनहुँ प्रेम घोरे मन भायन
जगत-जननि कौ महा अमङ्गलमूल लजावन
मानहुँ सब जग-वन्दन वन्दन-वार सजावन
मुकुलित अम्ब कदम्ब कदम्बनि पै कलकूजत
"केहू केहू" मोर अलापत आशा पूजत

देखहु निज आगमन-छटा जमुना-जल-कूलन
सटकि कुञ्ज वन सघन घटा नव फूले कूलन
द्रुम-डारन के बीच चपल-चहचही-चुहूकनि
कोयल-कीर-कपोत-कलित कल-कंठ-कुहूकनि
मानहुँ करि श्रुति-पाठ धरम की धुजा उड़ावत
"हे भारत! अब उठौ तजौ आलस" समझावत
ये सुबोल द्विज अपर डहडही डारन बोलत
कर सायक मन-हरनि हरनि सँग इत उत डोलत
दुबरी गहि मुख तृनहि सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति
श्री गोविन्द गुपाल कृष्ण सुधि करि जनु रोवति

भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि
सारस हंस चकोर घोर सब सोर करैं मिलि
सरस सुगन्धित जुही चुई परिमल शुचि धावत
पुष्प-धूल धूसरित हीय सब सूल नसावत
ऋतु-सुमौलिमनि! अहो! यहां के हरहु त्रितापन
प्रेमवन्त! गुनवन्त! करहु सुख-शान्ति सु-थापन
हमहूं एक गमार गाम-रस-पुलकित तन मन
जासों हमरो कह्यो सुन्यो छमियो सब भगवन्!
महिमा अपरमपार पार को पावत पूरन
सत्यवर्ननातीत गीत तव करत सुपूरन

सत्यनारायण।

विचारशील प्राणी।

[१]

जग में किसका प्रताप छाया है?
जिसने मस्तक सदा नवाया है।
द्वेष, ईर्षा कभी नहीं आई;
जीत जिसने घमण्ड पर पाई॥

[२]

दुःख में भी जो शान्तियुक्त रहा;
जिसने सङ्कट में भी न झूठ कहा।
गाली सुनकर जो मौन रहते हैं;
कष्ट पाकर भी कुछ न कहते हैं॥

[३]

जिनको प्राणी जगत के प्यारे हैं;
औ दयापात्र हैं, दुलारे हैं।
जो समय पर सहायता देते;
किन्तु बदले में कुछ नहीं लेते॥

[४]

जो न थकते हैं; काम करते हैं;
धर्म-पथ पर सदा विचरते हैं।
अपने मातापिता के अनुचर हैं;
प्राण-आधार सुख-सरोवर हैं॥

[५]

पाप करते न तन, वचन, मन से;
शुद्ध रहते शरीर चेतन से।
लोभवश हो नहीं कुमार्ग लिया;
पाप भाया न कुछ कुकर्म किया॥

[६]

जो उचित है उसीको करते हैं ;
उसके विघ्नों से कुछ न डरते हैं ।
मरते मरते भी सच का दम भरते ;
काल से भी कभी नहीं डरते ॥

[७]

जिनका जीवन पवित्र तारा है ;
भूले भटकों का एक सहारा है ।
प्रेम करते हैं सबके प्यारे हैं ;
डर किसीका न डरके मारे हैं ॥

[८]

नम्र, कोमल हैं ग्रैार जो ज्ञानी ;
ग्रपने मर्य्याद के न ग्रभिमानी ।
भक्ति ईश्वर की, जीसे करते हैं ;
उसके नियमों प जो विचरते हैं ॥

[९]

जोकि सच्चे हैं ग्रैार उद्योगी ;
काम करते हैं सत्य उपयोगी ।
उनका जग में प्रताप है छाया ;
है पताका उन्हींका फहराया ॥

कृष्णजीसहाय ।

मेरी चम्पा ।

मैं ग्रपना पूरा पता ग्रापसे नहीं बताऊंगा । उसे सुनकर ग्राप मेरी हँसी उड़ायेंगे । पर मैं ग्रापही लोगों में से किसी न किसी पाठक के साथ युक्तदेश के एक बहुत बड़े नगर में रहता हूं । मुझपर जो कुछ बीती है उसे मैं ग्राप लोगों को यहां पर सुनाना चाहता हूं ।

मेरे पिता एक बहुत बड़े साहूकार थे । उनकी देउढ़ी पर दिनरात भीड़ लगी रहती थी । दल के दल सन्त्री बन्दूकों पर सङ्गीनें चढ़ाये वहां पर पहरा देते थे । मुनीमख़ाने का ग्राँगन चाँदी के पत्र से मढ़ा हुग्रा था । उसके बीच में एक छोटा सा कामदार हैाज़ था, जिसमें एक सोने के फ़ैावारे से मोतिग्रों की लड़ी सी जल की धारा छूटा करती थी । रुपये की ठनाठन सुनते सुनते कान बहरे हो जाते थे । लक्ष्मीजी के चरणकमलों की छाया में वहां पर लोग बड़े सुख से रहा करते थे । पिताजी का बड़ा नाम था ।

परन्तु कालवश पिताजी का स्वर्गवास हुग्रा । मैं १९ वर्ष का नैाजवान माता लक्ष्मी की गोद में धर दिया गया । परन्तु मेरी बुद्धि बहुत ग्रोछी थी । लक्ष्मी की चञ्चलता का तो विचार मैंने किया नहीं, ग्रैार न उनकी पूजा ही करना मैं जानता था—उलटा मैंने उनका ग्रपमान करना ग्रारम्भ किया । मेरे बहुत से यार दोस्तों ने ग्रवसर पाकर मुझे घेर लिया । उनकी कुसङ्गति में पड़कर मैं धन को पानी की तरह बहाने लगा । भोग विलास ग्रैार वाहियात खुराफ़ात बातों में दिन बड़े ग्रानन्द से बीतने लगे । काम काज सब ढीला पड़ गया । चञ्चला लक्ष्मी ग्रैार भी ग्रधिक चञ्चल हो उठीं । ग्रन्त में वह बिलकुल चली ही गईं । सब कहीं सन्नाटा छा गया । सुख का स्वप्न चट से टूट गया । यार दोस्त सब हवा हो गये । मैंने संसारसागर के बिचले टापू में धूप से जलते हुए विशाल रेते पर ग्रपने को ग्रकेला निःसहाय पड़ा पाया ।

पर ग्रब क्या हो सकता था । ग्रपने किये पर पछताना,—बैठे बैठे हाय हाय करना,—हाथ मल मल कर रोना—इनसे भी कुछ लाभ न देख पड़ा । जो लोग मेरे सुख के दिनों में मेरे बड़े "हितू" थे, मैं एक एक करके उन सबों से सहायता माँगने गया । पर सबने मुझे धता बताया । निदान रोते पीटते, हाय हाय करते, थोड़ा बहुत माल ग्रसबाब, जो बचा खुचा रह गया था, उसे बेचबाच कर जो बहुत थोड़ी पूंजी मेरे हाथ लगी, उसेही लेकर एक छोटी सी गली में एक बहुत ही छोटा सा घर

[क]िराये पर लेकर वहाँ मैं रहने लगा, और ज्यों त्यों [क]रके अपने निघृ्ण जीवन को बिताने का मनसूबा [म]ैंने ठान लिया।

जब मैं करोड़पति था, जब लक्ष्मी की नरम [ग]ोद में लेटा रहता था, दिन तब भी बीत जाते थे; [औ]र, अब, दिनभर में दो मुट्ठी चने, या ऐसा ही कुछ और रूखा सूखा भोजन पाकर, एक अँधेरी सी कोठरी में, एक टूटी खटिया पर पड़ा रह [क]र भी—अब भी—मेरे दिन बीतने लगे—वे मेरे लिए ठहरे नहीं। अब भूख भी ख़ूब लगती थी, [औ]र अचरज की बात यह है कि निकृष्ट भोजन भी मुझे अच्छा लगता था। अब जोंक के समान चूस [क]र लोहू पी जानेवाले ख़ुशामदी मेरे अन्न में साझा [न]हीं लगाते थे। पुस्तकों के पढ़ने का शौक तब [त]क मुझे नहीं हुआ था*। समय काटने का कुछ [औ]र उपाय न पाकर मैं अपने कोठे पर खिड़की के सामने बैठा बैठा बाँसुरी बजाया करता था। इसी तरह कुछ दिन बीत गये। तब मेरे शून्यमय जीवन [प]र एक दूसरी प्रकार की छाया आ पड़ी।

मेरी गली बहुत तङ्ग, बहुत ही छोटी थी। उस [म]ें रहनेवाले लोग भी बहुत ग़रीब थे। मेरे घर के [ठ]ीक सामने ही एक स्त्री रहती थी। वह विधवा [थ]ी और बहुत सीधी सादी थी। उसने भी पहले [अ]च्छे दिन देखे थे। परन्तु अब उसका भाग खोटा [ह]ो गया था। बेचारी चरख़ा कात कर बड़ी कठि-[न]ाई से पेट पालती थी। उसके एक बेटी थी। वह [अ]पनी मा के काम काज में सहायता देती थी। [द]ोनों मा-बेटी दिनभर चरख़ा काता करतीं थीं [औ]र तीसरे पहर एक बार सूत को कहीं ले जाकर [ब]ेच आया करती थी। ये लोग मेरी ही जाति [क]े थे। कन्या साक्षात् लक्ष्मी का स्वरूप थी। इस समय खिलती हुई कली की तरह उसका यौवन विकसित होने लगा था। एक दिन यह बाला मेरे नेत्रों के सामने पड़ गई। उसे देखते ही मेरा लू का सा मारा हुआ जला भुना हृदय भी सरसब्ज़ हो उठा। जी में यही होने लगा कि यह मुझे मिल जाय तो फिर एक बार, अपने लिए नहीं, इस सुन्दर फूल की कली के लिए, अपने टूटे भाग्य की परीक्षा लूं। फिर, नये सिरे से, जीवन की टूटी नाव को संसार-सागर के लहरों में ले चलूं—इस सुन्दर फूल को हृदय से लगाकर फिर जीऊं। पर हाय, मैं अभागा, दरिद्र, गुणहीन, जिसे अपने पेट तक भरने का सामर्थ्य नहीं, जिसका नाम नगर नगर में बदनाम हो रहा है,—हाय, मुझे ऐसी दुराशा!

परन्तु आशा बड़ी मायाविनी है। आशा दुर्बल के हृदय में भी पहाड़ हटा देनेवाली शक्ति ले आती है। आशा ने न माना। वह मुझे फुसलाने लगी। उसने कहा, पूछ तो देखो। किससे पूंछूं, चम्पा की मा से?—मेरी हृदयवासिनी का नाम चम्पा है। कैसा प्यारा नाम है!—चम्पा की मा के सामने अपना मुँह कैसे दिखाऊं। वह मेरा नाम सुनते ही मुझे दुरदुरा देगी। मेरे कलङ्क ने मेरे अच्छे गुणों पर भी स्याही चढ़ा रक्खी है। अच्छा, चम्पा ही से पहले पूछूं! लज्जा ने कहा, छिः, छिः, तुम बड़े खोटे हो। अब भी तुम्हारी खुटाई नहीं गई। मैंने कहा, ठीक है, चम्पा से बोलना उचित नहीं। परन्तु आशा! वह क्यों मानने लगी? उसने फिर मेरे मन को उत्तेजना दी। उसने कहा, चम्पा तेरी लक्ष्मी है, चम्पा तेरे अंधेरे हृदय का दीपक है, चम्पा न मिली तो तेरा जीना ही वृथा—यमुनाजी में जाकर डूब मर। मैंने फिर अपना हृदय टटोला। हृदयने कहा बांसुरी हाथ में लेकर अपनी गोपी को बुला। मैंने वैसा ही किया। बहुत मन लगा कर मैं अपनी बाँसुरी में तान छोड़ने लगा। अपने मन को घोल घोलकर मैं बाँसुरी के सुर में मिला देने लगा। चम्पा, चम्पा, चम्पा,—चम्पा ध्यान, चम्पा ज्ञान, चम्पा प्राण—चम्पा मेरे जपने की माला हो गई। पाठक, आप मुझ पर हंसिये मत। मैं अपना हृदय खोलकर

* परन्तु अब मेरे घर में एक बहुत बढ़िया लाइब्रेरी हो गई है,—और जब से "सरस्वती" पत्रिका निकलने लगी तब से उस का भी मैं ग्राहक बन गया हूं—उसकी मैंने बहुत बढ़िया जिल्दें बँधवा रक्खी हैं।

आपको दिखा रहा हूं। इस समय आप को कुछ उदारता दिखानी चाहिए।

चम्पा के लिये मैं पागल हो गया। और चम्पा, क्या उसने मेरी पुकार नहीं सुनी? क्या मेरी बाँसुरी की ध्वनि उसने नहीं समझी? क्या मेरे हृदय की तान उसके हृदय तक नहीं पहुंची? नहीं, नहीं, कुछ भी नहीं हुआ। चम्पा को मेरे लिये कुछ भी परवा नहीं। मेरा हृदय शिथिल होने लगा। पर फिर भी आशा ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। वह मेरे कान में फिर मन्त्र फूंकने लगी। मेरी बाँसुरी फिर बड़े चावसे मेरे हृदय की वेदना गाने लगी। यों ही कुछ दिन बीत गये। चांदनी से खिलते हुए आकाश में जैसे मेघमाला के साथ चन्द्रमा आंख-मिचौनी खेला करता है, मेरे हृदय के भीतर आशा पापिनी उसी भांति गड़बड़ मचाने लगी—नये नये खेल खेलने लगी। उसके साथ साथ, मेरा दुर्बल हृदय कभी हँसने लगा, कभी रोने। परन्तु मेरे हृदयाकाश में प्रायः अंधेरा ही रहा। आशा की ज्योति भी उस घने अंधकार में क्षीण सी देख पड़ने लगी।

इसी भांति बड़े दुःख से और भी कुछ दिन बीत गये। मेरा हृदय भी नित्य नियमित समय पर बाँसुरी के सुर के साथ टपक टपक कर चूने लगा। निदान एक दिन अंधेरे आकाश में एक चमकता हुआ तारा देख पड़ा। मेरी खिड़की के सामने चम्पा के घर की खिड़की भी खुली देख पड़ने लगी। मैंने सोचा चम्पा भीतर खड़ी खड़ी मेरी पूजा ले रही होगी। फिर क्या था! मेरा हृदय और भी मत्त हो कर गाने लगा। कुछ दिनों बाद चम्पा ने झांक कर एक आध बेर मेरे घर की ओर देखा। मेरा उत्साह और भी बढ़ गया। इसी समय मैंने देखा, एक दूसरी स्त्री चम्पा के घर आती जाती है। मुझे यह भी जान पड़ा कि वह चम्पा की माँ का काता हुआ सूत उसके घर से मोल ले जाती है। मैंने धीरे धीरे उससे मित्रता करली। उसे बुला-कर चम्पा के घर का समाचार मैं पूछने लगा। मैंने सुना कि चम्पा के देह का वस्त्र चीथड़े चीथड़े हो गया है, पर धन के अभाव से वह एक साड़ी तक मोल नहीं ले सकती। मैंने झट दो रुपये लेकर उसे दिये और कहा कि इनसे तुम उसके लिए वस्त्र ले दो। परन्तु मेरा नाम न बताना। बुढ़िया चम्पा की माता को वे रुपये देने गई; परन्तु उसने नहीं लिये। बड़ी नरमी से उसने कहा कि "बहन, दिन मेरे बहुत खोटे हैं; पर मैंने अब तक कभी भिक्षा नहीं मांगी। जब तक बन पड़ेगा अपने हाथ पैरों के पसीने से जो कुछ मिलेगा, मैं उसीसे दिन काटूंगी। मुझे तुम ऐसी लालच मत दिखाओ। राम चाहेंगे तो कभी इस दुख का भी अन्त हो ही जायगा। चम्पा को किसी अच्छे घर में दे डालूं तो फिर मुझे कुछ चिन्ता न रहेगी"। मैं चम्पा की माता की यह आत्म-मर्य्यादा देख दङ्ग हो गया, और सोचने लगा, क्यों न हो, वह नीच घर की थोड़े ही है। फिर उस वृद्धा से मैंने कहा "तुम एक काम करो। चम्पा की माँ को समझा कर ये रुपये उसे उधार कह कर दे आओ और चम्पा के लिए वस्त्र लेकर जो कुछ बचे उससे उसे रूई मोल ले दो और कह दो कि इससे, नियम से अधिक सूत कात कर, जो पैसे बचेंगे उन्हें तुम्हें लौटा दिया करे, जिससे धीरे धीरे वह अपना ऋण चुका दे। तब तो इसका नाम भीख न होगा"।

मैंने जैसा कहा था वैसाही हुआ। चम्पा की माने रुपये उधार लिये और चम्पा के लिये एक नया मोटा वस्त्र मोल ले दिया। इससे मेरे हृदय को जो आनन्द मिला उसका वर्णन मैं कैसे करूं! परन्तु, नहीं, मुझे और भी अधिक आनन्द मिलना था। चम्पा मेरी चाल समझ गई और उसके और उसकी माता के लिये मैं जो दुःख सहता था, वह उस बुढ़िया ने चम्पा से एक दिन कह दिया। तब से चम्पा मेरे हृदय को समझ गई। इन्हीं दिनों में पास के कई मन्दिरों में नित्य सन्ध्या के समय खूब धूमधाम से ठाकुर जी की झांकी हुआ करती थी। स्त्री-पुरुष सभी झांकी को जाया करते थे। चम्पा

और उसकी माता भी कभी कभी जाया करती थीं। मैं भी अवसर पाकर दूर से उनके पीछे हो लेता था और मेरा प्यासा हृदय चम्पा के मुख-चम्पक की झांकी में मग्न हो जाता था। चम्पा ने मेरी यह करतूत भी देख ली और शायद मेरे मन की बात भी समझ ली। परन्तु मुझ पर वह नाराज़ नहीं हुई क्योंकि कभी कभी मन्दिर में एक आध बार बड़े चाव से वह मेरी ओर निहारा करती थी। मेरा मन-चकोर उसके चन्द्र-मुख को देख देखकर फूला नहीं समाता था। अपने मन की कृतज्ञता को मैं बाँसुरी के द्वारा उस तक पहुंचा देता था। इसी रीति से कुछ दिन और बीत गये। हम दोनों का प्रेम बढ़ता ही गया। पर आज तक हम लोग एक दूसरे से कभी बोले नहीं।

अब एक बात और हुई। चम्पा की मां से एक धनवान वैश्य ने चम्पा को मांगा और धन से वह उस की सहायता भी करने लगा। चम्पा की मां ने अपने दुःख के साथी चरखे को अलग उठा रक्खा। वैश्य अधेड़ था। कुछ दिन हुए उसकी पहली स्त्री मर गई थी। इस लिए उसने चम्पा से अपनी सगाई करना चाहा। चम्पा की माता भी राज़ी हो गई। ये बातें छिपी नहीं रहीं। मेरे कलेजे पर पहाड़ का एक बड़ा भारी टुकड़ा टूट पड़ा।

परन्तु कुछ और ही होना था। अपने विवाह का समाचार सुनकर चम्पा गुलाब के समान लाल हो गई। उसके सिर में चक्कर आने लगा। वह अपनी माता की गोद में अचेत हो कर गिर पड़ी। उसकी माता बहुत घबराई और उसके मुख पर पानी के छींटे देने लगी। परन्तु चम्पा कुछ सचेत होते ही फूट फूट कर रोने लगी। इससे माता समझ गई कि चम्पा इस विवाह से राज़ी नहीं है। फिर भी, उसने अपनी बेटी को बहुत कुछ समझाया बुझाया। परन्तु इससे चम्पा के हृदय की आंधी बढ़ने ही लगी। वह बहुत ही विकल हो गई। माता बेचारी क्या करती,—चम्पा उसे प्राण से भी प्यारी थी,—ठीक ठीक बात तो उसने कुछ समझी नहीं। परन्तु कुछ हीला हवाला करके सगाई तोड़ दी। दुखड़े का चरखा फिर पहले की भाँति चलने लगा। परन्तु जिस वैश्य ने विवाह का प्रस्ताव किया था वह बहुत चिढ़ गया। उसने चम्पा की माता को खुल्लम खुल्ला बहुत कुछ भला बुरा सुनाया। वह बेचारी कुछ उत्तर नहीं दे सकी। उपहार की सब वस्तु लौटाकर उसने घर के किवाड़ बन्द कर लिये। उस वैश्य ने कुछ ही दिनों में बड़ी धूम से दूसरी जगह अपना विवाह कर लिया। परन्तु सगाई टूट जाने से चम्पा की मा को मुहल्लेवालों में कुछ लज्जा सी होने लगी। इससे उस घर को छोड़कर वह एक दूसरी जगह उठ गई। चम्पा का अदर्शन मुझे खलने लगा। परन्तु पता लग जाने पर मैं भी फिर उसके घर के पास ही जाकर रहने लगा।

अब मुझे अपने मन में बड़ी ग्लानि होने लगी। मैं सोचता, चम्पा, तूने मेरे लिए फिर अपने सिर पर दुख का बोझा लाद लिया। पर मुझमें इतना भी सामर्थ्य नहीं कि मैं तेरी माँ से जाकर तुझे माँग सकूं! धिक्कार है मेरे इस जीवन को! इसी समय आशा फिर कहीं से बिजली की तरह लपक कर मेरे सामने आ खड़ी हुई और उसने कहा, "रे मूर्ख, पौरुष बिना कुछ नहीं होता। बाँसुरी ही अकेली तेरी सहायता नहीं कर सकती। तू भी तो कुछ कर!" मैं क्या करूं। मेरी बुद्धि काम नहीं करती। उसकी धार बिलकुल घिस गई थी। परन्तु आशा—आशा—हां, एक आशा ही मेरी आधार हो रही थी। उसने ही फिर मेरे साथ अच्छा सलूक किया। उसने कई दिन रगड़ रगड़ कर मेरी घिसी घिसाई बुद्धि को कुछ तेज़ कर दिया। मैं उठकर अपने पिता की बहियों को जाँचने लगा। मैंने पिताजी के लहलहाते हुए खेत को उजाड़ कर दिया था। परन्तु आशा कहती थी "ढूंढ़, ढूंढ़, सम्भव है कि एक एक बिखरे दानों को समेटकर तुझे कुछ थोड़ी सी पूंजी फिर मिल जाय"। और हुआ भी ऐसा ही। कालपी के एक महाजन के नाम मेरे पिता के कुछ रुपये निकले।

उसने उन्हें वापस नहीं किया था। मैंने तुरन्त उस के पास जाने का विचार किया, और थाली लोटा जो कुछ बचा खुचा रह गया था, सब बेच बाच कर मैं यात्रा की तैयारी करने लगा।

परन्तु चम्पा के अपने मन की बात कैसे कहूं? चलने के पहले उससे कह जाना चाहिए कि मैं तेरे ही लिए इतना परिश्रम कर रहा हूं। तू ठाकुरजी से बिनती करती रहिओ कि मेरी मनोकामना पूरी हो जाय। मैं फिर पूंजी पाकर व्यापार करूं और तब—और तब—चम्पा!—, हाय, क्या भगवान मेरी सुनेंगे!—

उस दिन कोई नहान था। चम्पा भी अपनी माता के साथ यमुना नहाने गई थी। मैं इसी अवसर पर, गठरी के कन्धे पर डाल, लोटा डोरी हाथ में ले, पथिक के वेष में, खोजते खोजते, चम्पा जिस घाट में स्नान करने गई थी उसके सामने, सड़क पर जाकर खड़ा रहा। कुछ देर में मेरी मनोमूर्त्ति घर लैाटी और मुझे सामने इस वेष में देख कुछ चकित सी हो गई। परन्तु एक बार आकाश की ओर देख, एक लम्बी साँस भर कर, अपनी माता के साथ आगे बढ़ चली। जाती समय फिर एक आध बेर उसने मेरी ओर देखा—फिर हम दोनों के नेत्र एक हुए। उसके मुख की द्युति से मुझे जान पड़ा कि चम्पा मेरे हृदय की बात समझ गई होगी। अस्तु, उसे जगदीश्वर की शरण में छोड़, उनका नाम स्मरण करते करते, मैंने काल्पी की सड़क पकड़ी।

राह में मुझ पर जो कुछ बीती, यहां लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं है। उसे सुनते सुनते आप उकता जायँगे, इससे मैं वह सब नहीं लिखूंगा। परन्तु मेरा काल्पी जाना व्यर्थ हुआ। महाजन का पता तो लगा, पर वह बेईमानी कर गया। उलटा मेरे पिता के नाम उसने कुछ रुपये निकाले। मेरे बहुत हाथ पैर जोड़ने पर उसे दया आ गई और उसने मुझे जेलखाने भिजवा दिया। डेढ़ महीने तक मैं जेलख़ाने में पड़ा रहा। जब छुटा, मेरे पास एक टका भी न था। निदान, विपत्ति का मारा, क्या करूं, कहां जाऊं, सोचते सोचते मैं आगे बढ़ा। सामने सड़क पर एक सराय मिली। मेरी दशा उस समय कङ्गालों से भी निकृष्ट हो रही थी। भठियारे ने मुझे अपने यहां टिकने ही नहीं दिया। परन्तु मेरी दुर्दशा पर एक बनिये के कुछ दया आई। उसने मुझे एक मुट्ठी भुने हुए चने खाने को दिये और एक कुञ्जी हाथ में देकर कहा, जाओ, सामने वह बाग़ है, ताला खोलकर उसके भीतर जाकर सो रहो। वह ज़मींदार का बाग़ीचा है, पर उसमें कोई नहीं रहता है। मैंने उससे कुञ्जी ले ली, और तुरन्त बाग़ीचेवाले घर में घुस गया। मुझे जाते देख भठियारा और बनिआ दोनों ठठाकर हँसने लगे और आपस में न जाने क्या कहने लगे। मैंने सोचा ये लोग मुझसे कोई दिल्लगी करनेवाले हैं; पर बाहर जाड़े में ठिठुर कर तो मुझसे नहीं रहा जाता। मैं बेधड़क किवाड़ खोलकर भीतर घुसने लगा। इतने में वह बनिया एक दिया लेकर आया और कहने लगा, मकान सूना है, अकेले डर लगैगा, यह दियासलाई लो, दिये में तेल भरा है, इसे जलाकर सोना। मैंने कहा दिये की कोई ज़रूरत नहीं। बनिये ने कहा, भैय्या, सचेत सोना, दिया जलने देना, इस मकान में एक भूत रहता है। मैंने कहा मेरे लिए अब मरना ही अच्छा है, भूत क्या करेगा, बहुत करेगा मेरा गला घोंट डालेगा। सो भी मुझे मंज़ूर है। निदान मैं भीतर घुस गया। एक कमरे में पलंग बिछा था। उस पर कुछ बिछैाना भी पड़ा था। मैं उसे बिछाकर, अपना कम्मल लपेटकर, सुख से पड़ रहा। परन्तु नींद नहीं आई। मैं सोचने लगा, भूत मेरा क्या कर लेगा। मुझे अब जीने की इच्छा नहीं है। इतने ही में किसी ने किवाड़ों में धक्का दिया। मैंने कहा "कौन?"

पाठक, भूतों की कहानी सुनकर आप कहेंगे कि लो, यह अब बकवाद करने बैठा, लड़कों से कहानी कहने लगा है। परन्तु आप चाहे मेरी कहानी

कन्या-आश्रम, जालन्धर.



ऊपर की लाइन, दाहनी तरफ़ से—

१. **श्रीमती सुभद्राबाई,** अवैतनिक लेडी-सुपरिंटेंडेंट।

२. **लाला देवराज,** आश्रम के अधिष्ठाता।

३. **श्रीमती सुन्दरीदेवी,** [नं० २ की पत्नी], आश्रम की अवैतनिक देखभाल करनेवाली।

४. **श्रीमती कर्म्मदेवी** [लाला सन्तराय, असिस्टेंट इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स की पत्नी], नं० ३ की कार्यकर्त्री।

५. **श्रीमती सावित्री देवी,** पाञ्चालपण्डिता की सहायक-सम्पादिका, और आश्रम की सहायक लेडी-सुपरिंटेंडेंट।

पर विश्वास कीजिए, चाहे न कीजिए, यह आप का अधिकार है। मुझ पर जो बीती है सो मैं कहे डालता हूं।

मैंने भीतर से कहा "कौन?" परन्तु कहीं कुछ नहीं। बाहर, बाज़ार में, चौकीदार पुकार रहा था "जागते रहो! जागते रहो!" फिर किवाड़ों में धक्का लगा। साहस ने कहा 'कुछ नहीं' है। इतने में किसी के आगे बढ़ने की आहट सुन पड़ी। किवाड़ तो खुले नहीं, पर तौभी कोई आगे बढ़ने लगा। साहस चुप हो गया। शब्द साफ़ सुन पड़ता था। कोई भ्रम की बात नहीं रही। कलेजा डरसे धड़ धड़ काँपने लगा।

किसी के चलने का शब्द अब फिर बहुत स्पष्ट सुन पड़ने लगा। इतने में बड़े ज़ोर से किवाड़ खुल पड़े। सामने एक अपरूप मूर्त्ति आविर्भूत हो गई। एक पतला दुबला लम्बा काला सा मनुष्य मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसके चेहरे में एक लम्बी काली डाढ़ी लटक रही थी। मुँह उसका बिलकुल सूखा, भौंहें लटकती हुईं, आंखों से कुछ तेज, कुछ धुँधली एक अद्भुत् प्रकार की ज्योति निकल रही थी। उसके कन्धे पर एक लाल दुपट्टा पड़ा था और सिर पर महाराष्ट्रों की सी एक पगड़ी थी। कमर में एक धोती बांधे हुए था, जिसके किनारे मरहठी ढंग के, लाल और बहुत चौड़े, थे। उसके हाथ में नाइयों का सा कुछ असबाब और एक छोटी सी लुटिया थी। मुझे पहले यह सन्देह हुआ कि क्या यही यहां का भूत है। यह तो मनुष्य ही सा देख पड़ता है। परन्तु मनुष्य हज़ार दुबला पतला हो, इसके समान दुबला होना असम्भव है। और न मैंने कभी इतना लम्बा मनुष्य ही देखा है। मैं पलंग पर बैठा यह सोचही रहा था कि वह जीव फिर धीरे धीरे चलने लगा। एक बड़ा लम्बा हाथ बढ़ा कर उसने चिराग़ की ज्योति उज्वल कर दी। तब हाथ की चीज़ों को ज़मीन पर रख, उसने हजामत बनाने का सब सामान बाहर निकाला और बड़ी फुर्त्ती से एक पैना अस्तुरा निकाल कर सिल्ली पर तेज़ करने लगा।

उसकी इस क्रिया को देखकर सिरसे पैर तक मैं पसीने पसीने हो गया और मनही मन सोचने लगा कि क्या आज इसीके अस्तुरे से मेरी मानवी लीला की समाप्ति लिखी है! उसने मुझे हाथ से इशारा करके अपने पास बुलाया। मैंने सोचा कि यदि मैं इसकी आज्ञा न मानूं तो सम्भव है कि अभी मेरे गले पर अस्तुरा फेर दे। परन्तु यह भी सोचने लगा कि कहीं आज्ञा मानने पर भी मुझे न मार डाले। फिर उसी क्षण मुझे स्मरण हुआ कि अब जीने से क्या लाभ, मरना ही अच्छा, परन्तु—हरे, हरे, क्या किसी की मृत्यु इस भांति भी सम्भव है! जो हो, वह मूर्त्ति मुझे फिर बुलाने लगी और इस बार मैं बड़े साहस से अपना कलेजा दृढ़ कर के उठा और उसके सामने जा बैठा। वह मूर्त्ति भी तुरन्त लुटिया से जल लेकर मेरे सिर पर मलने लगी और बड़ी फुर्त्ती से मेरा सिर सफ़ाचट कर के मेरी डाढ़ी, मोंछ, यहाँ तक कि भौंहों के बाल भी, सब मूड़ दिये। मैं थर थर काँप रहा था। जब उसने सब मूड़ लिया, मैं सोचने लगा कि अब गरदन पर छुरी फेरने की पारी आ पहुंची। परन्तु जान पड़ता है कि अब मुझ पर से उसका अधिकार जाता रहा। वह उठ खड़ा हुआ। फिर पहले की सी धीमी चाल से वह द्वार की ओर लौटने लगा। तीन ही क़दम आगे बढ़ कर वह रुक गया, और मेरी ओर घूम कर बड़ी कातरता से उसने अपने सिर और अपनी डाढ़ी पर हाथ फेरा। जब मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया तब कुछ दुःखित सा होकर वह फिर तीन पग आगे बढ़ा और तब फिर मेरी ओर घूमकर अपने बालों पर हाथ फेरने लगा। मैंने सोचा, हे भगवान, यह कैसी बात है? क्या यह मुझे अपने बाल मूड़ देने को कह रहा है? इस समय साहस मेरे हृदय में फिर लौट आया। मैंने सोचा, यह निःसन्देह मेरी हानि नहीं करेगा। करना होता तो अब तक कुछ कर ही डालता। क्या जानें इसी की

सहायता से मुझे चम्पा मिल जाय। बस, मैंने तुरन्त उसे हाथ से इशारा करके बुलाया। और वह भी बड़े आनन्द का भाव दिखाता हुआ लौट कर मेरे सामने आ बैठा। मैंने कभी नाई का काम तो नहीं किया था, परन्तु यथाशक्ति उसकी हजामत बनाने में मैं लगा। जिस क्रम से उसने मुझे मूंड़ा था, उसी क्रम से मैंने भी, ख़ूब अच्छी तरह से, उसकी हजामत बनाई। जब मेरा काम हो गया, मैंने अपने सामने एक भयङ्कर, घृणास्पद, बन्दर की सी मूर्त्ति बैठी पाई। परन्तु वह अब बड़ा प्रसन्न जान पड़ता था। उसने खनखनाते हुए एक प्रकार के तीव्रस्वर से कहा, "भैया, तू ने आज मोकूं बचाय लयो। आज मेरौ जेलखानौ छूट गयौ। अब मेरौ जे कायौ पलट जायगौ। कह, तोकूं कछू चाहियै?" मेरे मुख से निकल पड़ा 'चम्पा, मेरी चम्पा'। उस ने उत्तर दिया, 'अच्छा, तू घर कूं लौट जा, अपने नगर में, पीपावारे पुलके पास, अगली चौथ के दिना तेरी इच्छा पूरी होवैगी। तोकूं बड़ी माया मिलेगी। तेरी चम्पा भी तोकूं मिल जायगी। तब एक बिरियां फिर मेरी सुध लीजिओ। काऊ ब्राह्मण के हाथ तें गयाजी में मेरे नाम से एक पिण्डा दिवाय दीजौ"। मैंने बड़े हर्ष से उसकी आज्ञा स्वीकार कर ली। वह तुरन्त मेरे आंखों के सामने हवा में मिल गया। मैं भौचक्का सा रह गया।

बाक़ी रात मैंने ज्यों त्यों कर काटी। एक पल भर के लिए भी आँख न लगी। जब सवेरा हुआ, मैं जीता जागता बनिये की दूकान पर आया। तब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने अपनी सारी कथा कह सुनाई। मेरा घुटा हुआ सफ़ाचट चेहरा और सिर देखकर सब लोगोंने मेरी बात सत्य मानी। परन्तु उन लोगों ने कहा, तुम्हें हम अभी यहां से जाने न देवेंगे, दो चार दिन इसी मकान में तुम्हें अभी ठहर कर दिखाना होगा कि इसमें अब भूत नहीं है। मैं तो अब घर लौटने के लिये उत्सुक हो रहा था; परन्तु किसी ने मुझे न जाने दिया। और २।३ दिन मुझे उसी मकान में रहना पड़ा। इसी बीच में जिनका मकान था, वह ज़मींदार भी दल बल लेकर मेरा दर्शन करने आये और एक रात मेरे साथ वहां निर्विघ्न रह कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे अच्छे अच्छे वस्त्र बनवा दिये और पचास रुपये नक़द देकर बड़े प्रेम से मुझे विदा किया।

मैं भी झटपट अपने देश को लौट आया। और चौथ के दिन, भोर होते ही, बड़ी व्यग्रता से पीपे वाले पुल के सामने जा कर खड़ा हुआ। अब तक कोई नहीं जागा था। कुछ देर में लोग आने जाने लगे। तीन भिखमँगे कँगले भी पुलके सामने आ बैठे और "धर्म्म की राह पर" चिल्लाने लगे। मैंने सभों को दो एक पैसे दिये। उनमें से एक कँगले के एक पैर नहीं था। उसकी जगह एक लकड़ी का पैर खटखटाता हुआ वह चलता था।

अभी सवेरा हुआ ही था। अधिकतर मज़दूर ही वहां पर से आने जाने लगे थे। मैंने सोचा कि आज कोई दैवी घटना होगी। कोई बड़ा आदमी, कोई सेठ साहूकार वा कोई राजामहाराजा आकर मुझे अपने हृदय से लगा लेगा। परन्तु ऐसा कोई भी मनुष्य वहां नहीं आया। दिन चढ़ने लगा। मैं अपने स्थान से नहीं हटा। परन्तु किसी ने मेरी ख़बर नहीं ली। खड़े खड़े मैं घबरा गया। दूर से वह एकटँगा फ़कीर मुझे देख रहा था। एक बार वह मेरे पास आया। मैंने जेब से एक पैसा निकाल कर उसके हाथ में दिया। वह 'भला हो' कहकर खटखटाता हुआ फिर एक ओर जाकर बैठा।

अब मुझे भूख सताने लगी। पास एक मिठाई-वाले से बहुत निकम्मी गुड़ की कुछ मिठाई लेकर मैंने जलपान किया और पुल के सामने टहलने लगा। दोपहर बीत गई। तीसरा पहर भी गया। परन्तु तब भी किसीने मुझ पर दया नहीं की। मेरा हृदय घबराने लगा। परन्तु आशा मुझे फिर समझाने लगी। उसने कहा, अधीर क्यों होते हो; अभी तो दिन बाक़ी है; देखो न क्या होता है। मैं

फिर आशा को हृदय में रख कर टहलने लगा। देखते देखते साहब लोगों की बग्घियां हवा खाने को निकलने लगीं;—मैंने सोचा, हो न हो लाट साहब या कोई और बड़े अङ्गरेज़ मुझे आज किसी भारी ओहदे पर नियुक्त करेंगे। परन्तु, हाय, सूर्य अस्त होने लगा। काले गोरे किसी साहब ने मेरी ओर आंख तक उठाकर नहीं देखा। देखता था वही लँगड़ा भिखारी। मुझे वहां दिन भर खड़ा देख कर वह मन ही मन आश्चर्य करने लगा। एक बार फिर वह मेरे पास आया; परन्तु साहस कर वह कुछ पूछ न सका। मैंने उसे देख कर चिड़-चिड़ा कर सोचा यह बड़ा पापी है। फिर मेरे पास आया है। परन्तु किसीसे बोलने की रुचि मुझे उस समय तनक भी नहीं थी। एक पैसा उसके सामने फिर फेंक कर मैं वहां से हट कर दूसरी जगह जा खड़ा हुआ। सन्ध्या हो गई। पुल पर अँधेरा छा गया। बाज़ार में दीपक जलने लगे। मेरा सिर चक्कर खाने लगा। मैं बेदम सा हो गया। आशा मायाविनी अब भी कुछ कान के पास फिस-फिसाने लगी। मैंने झिड़ककर उसे हटा दिया। वह अलग खड़ी होकर मेरी दशा देख देख मुसकराने लगी। लोग सब एक एक करके वहां से उठ गये। भिखमँगे भी सब चले गये। नहीं गया केवल वही लकड़ी के पैरवाला भिखारी। वह फिर खट खट करता हुआ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। मुझे बड़ी एकाग्रता से वह देखने लगा। उसे देखकर मेरी देह में आग लग गई। मैं जल भुन कर झिड़ककर बोल उठा, क्यों बे, फिर तू मेरे पास आया। चल, दूर हो, मेरे सामने से हट जा। परन्तु वह नहीं हटा। मेरी रुखाई से कुछ दुखी सा होकर वह बोला, लाला, ख़फ़ा मत हो। तुम्हें मैं यहां तड़के से देख रहा हूं। अब मुझसे नहीं रहा जाता। सवेरे मैंने तुमको .खुश .खुश देखा था; पर ज्यों ज्यों दिन बीतने लगा, तुम चिड़चिड़े से होते गये। तुम किस की राह देख रहे हो? उसकी बातें सुनकर मुझे फिर क्रोध चढ़ आया; परन्तु उसका एकाग्र और विनीत भाव देखकर क्रोध की ज्वाला ठण्ढी पड़ गई। मेरे सिर की गर्मी ने बड़े वेग से चक्कर देकर मुझे, वहीं, सरकारी लालटेन के पास, बिठला दिया। मुझ में बोलने तक की शक्ति नहीं रही। परन्तु उस लँगड़े भिखारी ने मेरा साथ न छोड़ा। वह भी मेरे सामने बैठकर बड़े विनय से मेरे मन की बात खींचकर निकालने की चेष्टा करने लगा। मैंने एक लम्बी साँस भरकर कहा, तुम्हें मेरे झगड़ों से क्या काम। तुम फ़क़ीर आदमी अपने घर की राह लो। यों कहकर मैंने फिर एक पैसा दिया। उसने कहा, लालाजी, भगवान आपको तन्दुरुस्त रक्खे। आपने तो आज मुझे कई पैसे दिये; पर मेरे जी की खल-बली नहीं गई। आप सवेरे से यहां पर पड़े हैं, यह क्या मामला है? क्या किसीने यहां पर आप से मिलने कहा था और नहीं आया। इसीसे आप उदास हो गये? मैंने कहा, हां। उसने पूछा वह कौन है? मैंने कहा सो मैं नहीं जानता।

उसने कहा, तुम उसे नहीं जानते तो किसने तुमसे यहां आने कहा था? मैं क्या उत्तर देता! मैंने कहा, मैंने सपना देखा था कि कोई मुझसे यहां आज मिलेगा—

भिखारी बोला—और तुम्हें सेठ लछमीचन्द का ख़ज़ाना दे देगा! अच्छी कही! भला, आप ऐसे लोग भी इन वाहिआत बातों के लिए इतनी तक-लीफ़ उठाते हैं? सपना तो सपना ही है। उसका क्या ठिकाना।

मैने बड़े दुःख से आह भरकर कहा, बाबा, तुम सच ही कहते हो। जान पड़ता है मैंने योंही इतनी तकलीफ़ उठाई है। मैंने सपना देखा था कि कोई यहां पर आकर मुझे दौलत का पता बता देगा।

लँगड़े ने कुछ ज़ोर से हँसकर कहा, यह तो वह मेरीवाली बात हो गई। लालाजी, पहले मैं लँगड़ा नहीं था। मैं रेल का जमादार था। एक बार अञ्जन के नीचे गिरकर मेरा पैर कट गया। तभी से मेरी यह दशा हो गई है। सुनिये; एक दफ़ा मैंने

भी सपना देखा था कि———मण्डी में——— वाले साहूकार के बाग़ीचे में———जगह, मौलश्री के नीचे, एक पत्थर की पटिया बिछी है, वहां ख़ज़ाना गड़ा है। मैं दूसरे ही दिन वहां दौड़ा दौड़ा गया, पर कहीं कुछ नहीं। देखा, दो साँप बैठे हैं; मुझे देख वे फनकार मार मुझ पर आ लपके; मैं बाप रे बाप करके चिल्लाता हुआ भाग आया। सपने पर विश्वास करने का तो यही फल हुआ कि जान जाते जाते बच गई।

लँगड़े की कथा सुनकर मेरा कलेजा यों धड़-धड़ाने लगा जैसे लोहार की धौंकनी चलती हो। उसने जो पता बताया वह मेरे पिता ही का बाग़ था। वह एक समय मेरा ही था। अब दूसरों के हाथ जाकर उजाड़ पड़ा हुआ है। मेरे मन में आई कि हो न हो वहां अब तक धन गड़ा होगा। नाई राम ने इस लँगड़े के मुख से उसीका पूरा पता बताया है। और वह है भी मेरे ही पिता का धन। चलो, उसे भी देख लें। यों सोचकर पहले कुछ स्वस्थचित्त होकर मैंने उस भिखारी को धन्यवाद दिया और कहा, अच्छा, तुम जैसा कहते हो वही सही। मैं घर जाता हूं।

दूसरे दिन सवेरा होते ही मैंने फावड़ा, गैंती आदि इकट्ठी कर लीं और रात को अपने पुराने बाग़ में भिखारी के बताये हुए स्थान पर पहुंचा। वहां पर वह शिला पड़ी थी; परन्तु किसी साँप ने मुझे उसके उठाने से नहीं रोका। शिला के नीचे कुछ खोदने पर एक लोहे की चादर मिली। उसके नीचे—अहः हः—हे भगवान, तू बड़ा दयालु है, तेरी महिमा अपरम्पार है—मुझे ज्ञान पड़ा कि मैं अलीबाबा की चोरोंवाली गुफा में आ गया।

अस्तु, मैं फिर बड़ा धनी हो गया। फिर मेरी कोठी चल निकली। फिर मेरे नौकर चाकर, गाड़ी घोड़े, मकान, बग़ीचे—सब हो गये। उस बाग़ को दुगना मोल देकर मैंने फिर ले लिया। और चम्पा,—मेरी चम्पा,—जब कभी कोठी के काम काज से सावकाश मिलता, मैं छिपकर, वेष बदलकर अपने पुराने ठौर पर पहुंच जाता और बाँसुरी की सुर से अपने हृदय को अपनी प्यारी के हृदय तक पहुंचा देता। जब उसने देखा कि मैं फिर लौट आया हूं तब अपना पहला सलज्जभाव छोड़कर एक आध बेर वह मेरे सामने होकर दूर से दर्शन देती और मेरे आनन्दमय मुख को देखकर प्रसन्न होती।

निदान कुछ दिनों पीछे मैंने उचित रीति से चम्पा की माता के पास उसे ब्याहने का संदेशा भेजा। साथ ही अपनी उस पुरानी सूतवाली बुढ़िया के हाथ चम्पा से भी चुपचाप अपना सच्चा हाल कहला भेजा। अब भला चम्पा की माता क्यों नाहीं करती।

पर अब कहानी बढ़ाने से कुछ फल नहीं। बस, इतना ही आपसे कहना है कि बड़े धूमधाम से मैंने चम्पा का पाणिग्रहण किया। चम्पा,—मेरी चम्पा,—लजाती हुई मेरे हृदय से आ लगी।

* * * * *

पाठकगण, मैं बाँसुरी बजा लेता हूं। परन्तु मुझे कविता बनानी नहीं आती। आप लोगों में से कोई यदि कवि हों तो मेरी चम्पाकली के गुणों पर एक कविता लिख कर मुझे सुना दीजिए। देखिए, उसके विशुद्ध प्रेम ने मुझे किस ठौर से किस ठौर पर पहुंचा दिया है। अहो, विशुद्ध प्रेम स्वर्ग का पारिजात है,—नहीं, उससे भी बढ़कर है—विशुद्ध प्रेम अनिर्वचनीय है।

आप कहेंगे कि जिसकी कृपा से मुझे इतना सुख मिला, इतनी सम्पत्ति मिली, उस लँगड़े जमा-दार का मैंने क्या किया। आप सत्य कहते हैं, उस के योग्य पारितोषिक देना असम्भव है। वह उसी बाग़ में रहता है। मैंने उसकी सेवा के लिए दो नौकर रखवा दिये हैं। उसे काम काज कुछ नहीं करना पड़ता। केवल चम्पा के दो बालकों को गोद में बिठलाकर उन्हें वह नाई भूत की कहानी सुनाया करता है*।

पार्वतीनन्दन।

* टामस कारलाइल अनुवादित एक जर्मन कहानी की छाया लेकर लिखी गई।

क्या चिड़ियां भी सूँघती हैं ?

क्या चिड़ियों में भी घ्राण-शक्ति होती है ? क्या चिड़ियां भी सूँघती हैं ? क्या चिड़ियों को भी सुगन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान होता है ? इस विषय में पश्चिमी देशों के विद्वान् आज कल अपनी अक़ल लड़ा रहे हैं। वे तरह तरह के तजरुबे कर रहे हैं। तरह तरह की चिड़ियां पाल कर वे उनकी परीक्षा कर रहे हैं। चिड़ियों के मग्ज़ की परीक्षा करके उन्होंने इस बात का पता लगाया है कि घ्राण-शक्ति के ज्ञान-तन्तु उनमें होते तो हैं परन्तु बहुतही सूक्ष्म रूप में होते हैं। उनकी दशा ऐसी नहीं होती कि उनके द्वारा चिड़ियों को घ्राणज ज्ञान हो सके। सामुद्रिक चिड़ियों की अपेक्षा ज़मीन पर रहने और वहीं अपना शिकार ढूंढ़ कर पेट भरनेवाली चिड़ियों में घ्राणेन्द्रिय का आकार कुछ बड़ा होता है। पर अभी तक यह बात विज्ञानियों के ध्यान में नहीं आई कि यह इन्द्रिय घ्राण का ज्ञान कराने ही के लिए है अथवा इससे और भी कोई काम निकलता है।

मांस खानेवाली चिड़ियों की परीक्षा से यह बात सिद्ध हुई है कि यदि यह इन्द्रिय उनमें हो भी तोभी वे उससे घ्राण लेने का फ़ायदा नहीं उठातीं। उसकी सहायता से वे अपनी ख़ुराक का पता सूँघ कर नहीं लगा सकतीं। अगर किसी जानवर की लाश किसी चीज़ से छिपा दी जाय या किसी चीज़ की आड़ में कर दी जाय तो गीध, कौवे और चील्ह वगैरह मांसभक्षी चिड़ियां उसे नहीं ढूंढ़ सकतीं। सूँघ कर वे उसका पता नहीं लगा सकतीं। डाकृर म्यूलेमार्ड ने इस बात को परीक्षा से सिद्ध किया है। बहुत मौक़ों पर ऐसा हुआ है कि शिकार किये हुए जानवर को वे घर नहीं ले जा सके। भारी होने के सबब से उसे वे अकेले नहीं उठा सके। इस हालत में उन्होंने उस जानवर का पेट फाड़ कर उसकी आंतें वगैरह फेंक दी हैं और लाश को वहीं पास किसी गढ़े में छिपा दिया है। आदमियों को साथ ले कर लाश उठा ले जाने के लिए जब वे लौटे हैं तब उन्होंने देखा है कि सैकड़ों मांसख़ोर चिड़ियां आलायश वगैरह के पास बैठी हैं। पर वहीं, ज़रा दूर पर, गढ़े के भीतर छिपाई हुई लाश के पास वे नहीं गईं। उसका कुछ भी पता उनको नहीं लगा। यदि उनमें घ्राण-शक्ति होती तो सूंघ कर वे ज़रूर उसे ढूंढ़ निकालतीं।

अलेग्ज़ाण्डर हिल साहब ने अनाज खानेवाली चिड़ियों की घ्राण-शक्ति की परीक्षा की है और उसका नतीजा उन्होंने प्रकाशित किया है। उन्होंने अनाज की एक छोटी सी ढेरी लगाकर उसके भीतर रोटी के टुकड़े रख दिये। इन टुकड़ों को उन्होंने पहले ही से हींग, कपूर, लैवेण्डर इत्यादि उग्र गन्धवाली चीज़ों से ख़ूब लपेट दिया। अनाज चुनने के लिए उन्होंने एक भूखे मुर्ग़े को छोड़ा। उसने चुनते चुनते रोटी पर चोंच मारी और उसके भीतर उसने चोंच प्रवेश कर दी। एक सेकण्ड में उसने चोंच खींच ली और गरदन ऊपर उठाकर उसे ज़रा हिलाया। बस, फिर वह खाने लगा और रोटी के टुकड़ों को एक एक करके खा गया। इस जांच से अच्छी तरह यह न मालूम हुआ कि मुर्ग़े को गन्ध से घृणा है या प्रीति। इस कारण हिल साहब ने एक और जांच की। इस बार की जांच पहले से अधिक कड़ी थी।

उन्होंने छलनी की तरह के एक बर्तन को उलटा करके उसके ऊपर दाना रख दिया। बरतन के नीचे क्लोरोफ़ार्म (ज्ञाननाशक दवा जिसे सुँघा कर डाकृर लोग चीड़ फाड़ का काम करते हैं) में डुबो-कर एक स्पञ्ज का टुकड़ा उन्होंने रक्खा। तब दाना चुगने के लिए उन्होंने एक मुर्ग़ी को छोड़ा। जब थोड़ा दाना चुगने से रह गया तब उस चिड़िया ने बरतन के ऊपर धीरे धीरे चोंच मारना शुरू किया। उसने बार बार अपना सर ऊपर को उठाया और बाज़ू फैलाये। इससे यह ज़ाहिर हुआ कि

क्लोरोफ़ार्म का कुछ असर उस पर ज़रूर हुआ। परन्तु जब उन्होंने मुर्ग़ को उसी तरह चुगने के लिए छोड़ा तब उस हज़रत ने ज़रा भी इस बात का चिन्ह नहीं ज़ाहिर किया कि उस पर क्लोरोफ़ार्म का कुछ भी असर हुआ हो। इसके बाद परीक्षक ने प्रूज़िक ऐसिड को छलनी के नीचे रक्खा। यह बहुत ही तीव्र और उग्रगन्धी तेज़ाब है। फिर मुर्ग़ महाशय चुगने के लिए छोड़े गये। तेज़ाब की तेज़ी का ख़याल करके हिल साहब वहां से हट आये। कुछ देर तक उस वीर मुर्ग़ ने मामूली तौर पर झट झट दाना चुगा। किसी तरह की कोई ग़ैर-मामूली बात उसमें नहीं देख पड़ी। पर ज़रा देर बाद उसे चक्कर आने लगा। एक टांग को दूसरी पर रखकर वह खड़ा हो गया। बार बार अपनी चोंच को वह ऊपर उठाने लगा। फिर कुछ देर में वह वहां से हट आया और अपने रहने की जगह चला गया। वहां अपना सर नीचे झुका कर और पंख फैला कर वह खड़ा रहा। दस मिनट तक वह इस हालत में रहा। इसके बाद वह उस छलनी के पास फिर वापस आया। पर दुबारा दाना चुगने की कोशिश उसने नहीं की। देखने पर मालूम हुआ कि उसकी चोटी ख़ून से भीगी हुई थी।

इन परीक्षाओं से इस बात का अच्छी तरह पता नहीं लगा कि चिड़ियों में घ्राण-शक्ति होती है अथवा नहीं। और होती है तो कितनी होती है; किस किस चिड़िया में होती है; और किस में कम और किस में अधिक होती है। इस विषय की जांच जारी है। आशा है कि कुछ दिनों में कोई निश्चित सिद्धान्त स्थिर हो जाय।

जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय।

लाला देवराज ने अपने कन्या-महाविद्यालय की रिपोर्ट हमारे पास समालोचना के लिए भेजी है। यह रिपोर्ट १९०३-०४ की है। इसके साथ ही आपने आश्रम, अनाथालय और विद्यालय के अध्यापक-अध्यापिकाओं के फ़ोटोग्राफ़ भेजने की भी कृपा की है। इस रिपोर्ट को पढ़कर और फ़ोटोग्राफ़ों को देखकर भारमी प्रेस, कानपुर, के मालिक, हमारे मित्र, बाबू सीताराम इतना प्रसन्न हुए कि उन्होंने तत्काल २०) रुपये पुरस्कार के तौर पर विद्यालय को भेज दिये।

स्त्रीशिक्षा की बड़ी ज़रूरत है। इस विषय में सब की एक राय है। मतभेद चाहै इसमें हो कि किस तरह की और कितनी शिक्षा लड़कियों को देनी चाहिए; पर शिक्षा देने की आवश्यकता के सम्बन्ध में कोई मत-भेद नहीं हो सकता। स्त्रियों को शिक्षा देना ही चाहिए। और शिक्षा शब्द को विशेष व्यापक मान कर, पढ़ने लिखने के सिवा, उसमें कला-कौशल, गृह-प्रबन्ध, स्वास्थ्य-रक्षा और शिशु-पालन इत्यादि विषयों को भी शामिल समझना चाहिए।

जालन्धर के कन्या-विद्यालय का जन्म १८९[illegible] में हुआ था। पहले वर्ष इसमें सिर्फ़ ८ लड़कियां थीं और ख़र्च के लिए सिर्फ़ ५०) रुपये थे! परन्तु इसके उत्साही सञ्चालकों ने विद्यालय के काम में इतना उत्साह दिखाया और इतना यत्न और परिश्रम किया कि दिन पर दिन इसकी तरक़्क़ी होती गई। यहां तक कि इस समय, इसमें, तीन अध्यापक और सात अध्यापिकायें हैं; डेढ़ सौ के क़रीब लड़कियां पढ़ती हैं; और वे सब ११ जमातों में बँटी हुई हैं।

इस विद्यालय की एक मुख्य सभा है। नियमानुसार उसकी रजिष्टरी हुई है। हर चौथे वर्ष इस सभा के सभासदों का फिर से चुनाव होता है। इस वर्ष इसमें २४ सभासद हैं। वे सब प्रतिष्ठित पुरुष हैं। उनमें रईस, विद्वान, व्यापारी, वकील, अध्यापक आदि सभी हैं। श्रीमती सुभद्रा बा[illegible] नाम की एक साध्वी स्त्री भी हैं। वे अकोला (बरार) से आई हैं और विद्यालय का जो आश्रम, अर्थात् बोर्डिङ्ग हाउस है, उसकी वे अवैतनिक [illegible]